फरवरी – 2021
वर्ष–85 | अंक–2 | ₹–19 प्रति | ₹–220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

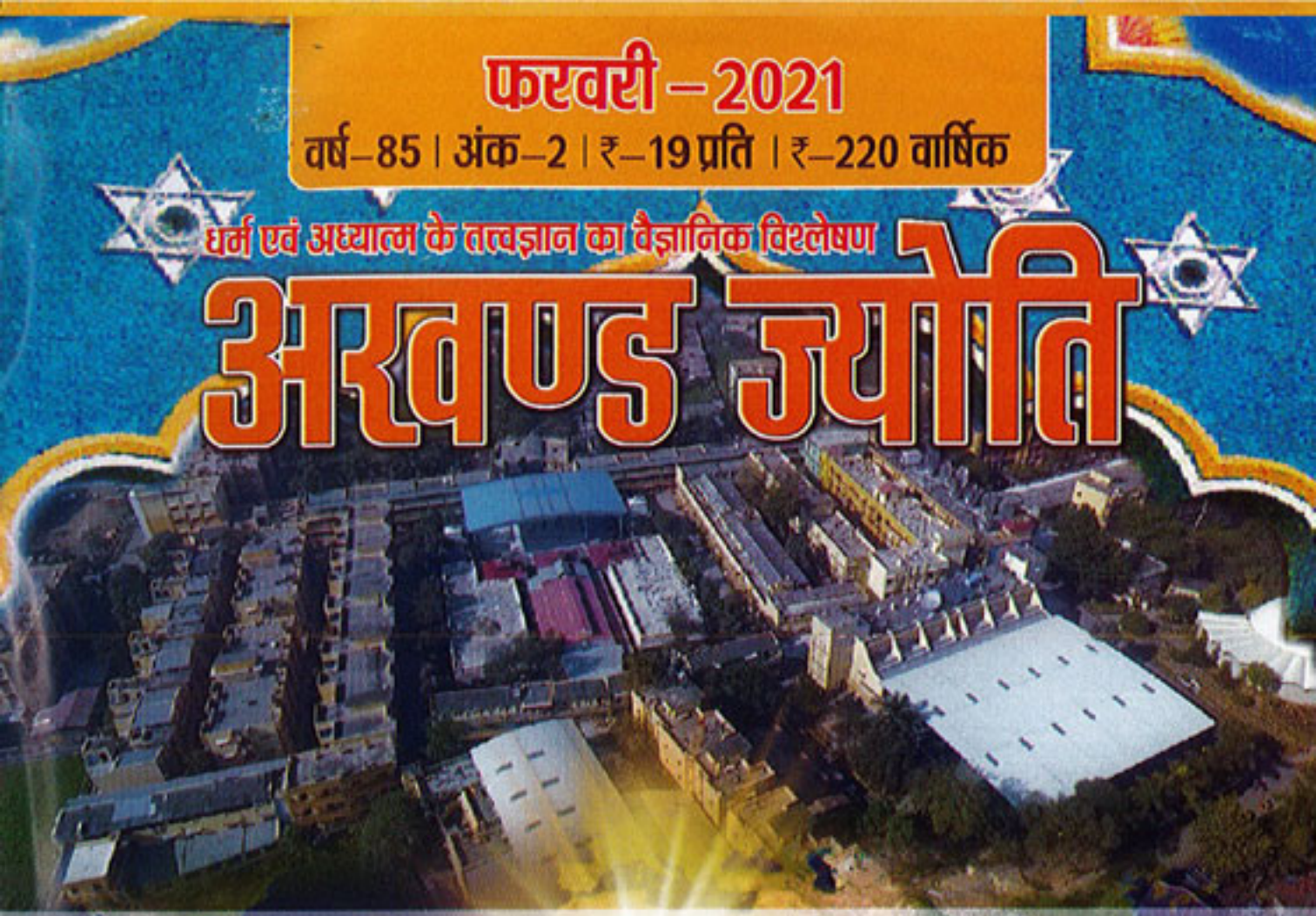

गायत्रीतीर्थ
शांतिकुंज
स्वर्ण जयंती वर्ष
50
1971-2021

7 एक साहसिक अभियान है अध्यात्म
12 महाकाल का घोंसला है शांतिकुंज
25 स्वाध्याय–कैसे जानें स्वयं को ?
47 जीवनशैली के विकार एवं इनका उपचार

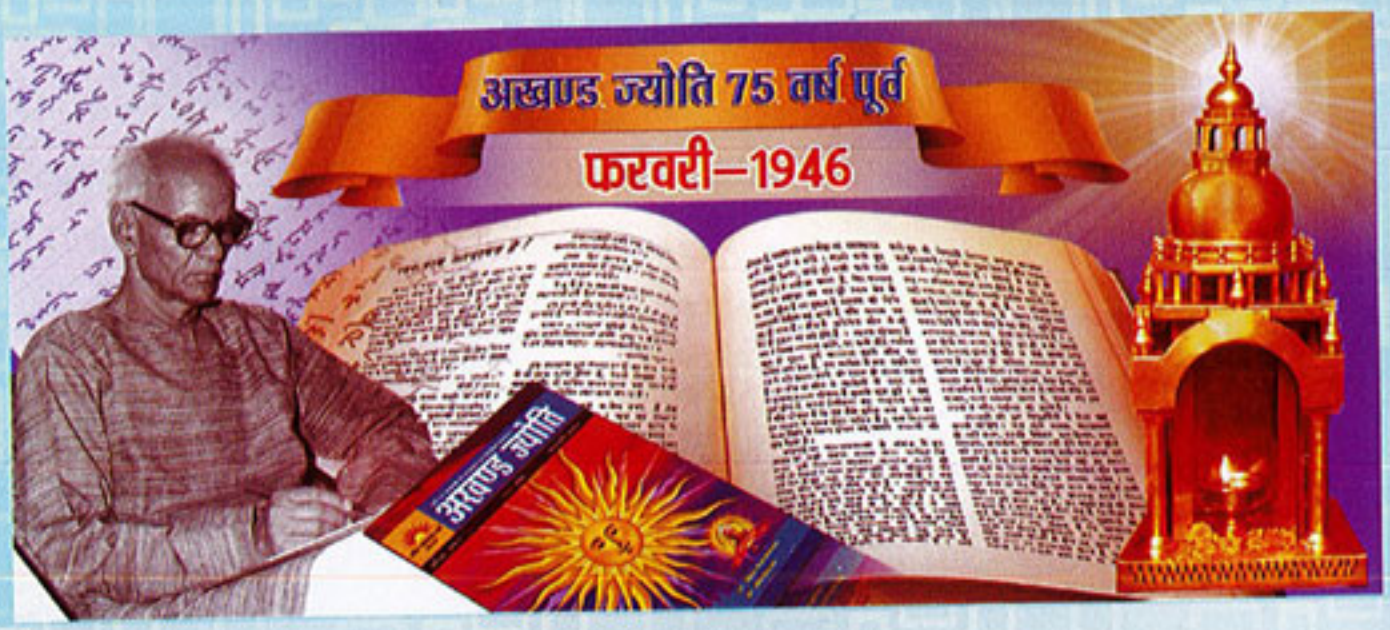

अपने चिकित्सक स्वयं बनिए

अपने आप को सुधारना या बिगाड़ना तुम्हारे ही हाथ में है। तुम्हें रोग और व्याधि, शुभ या अशुभ फल अपने कर्मों के ही कारण मिलते हैं। यदि तुम दास बनना चाहोगे, तो दास बने रहोगे। यदि तुम अपने आप को स्वामी बनाओगे, तो स्वामी बन जाओगे।

अपने मनोविकारों को रोको। अंतःकरण के भाव किस प्रकार के हैं, इसका पूरा-पूरा ध्यान रखो। बुरे विचार, घातक चिंता तथा उपद्रवी शोकजनक दुर्भावनाओं को समूल नाश कर दो। अंतःकरण में उत्साही, प्रसन्न एवं स्फूर्तिदायक विचारों का तथा दिव्य भावनाओं का संचार कर दो। संसार के असाध्य रोगों का उपचार सद्विचार ही है। परमात्मा का विचार ही सब व्याधियों को दूर करने वाला है। लोग तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करते हैं, यह जानने की आवश्यकता नहीं। तुम सद्विचार करो, परमात्मा में अटल श्रद्धा और विश्वास रखो। इससे तुम्हें ज्ञात होगा कि व्याधियों का तुमसे जो संबंध था, वह न्यून होता चला जा रहा है। ज्यों-ज्यों तुम्हारे सद्विचारों का बल बढ़ता जाएगा, त्यों-त्यों व्याधियाँ स्वयं निर्मूल होती जाएँगी।

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 85
अंक	: 02
फरवरी	: 2021
माघ-फाल्गुन	: 2077
प्रकाशन तिथि	: 01.01.2021

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-

आजीवन (बीसवर्षीय)
भारत में : 5000/-

अखण्ड ज्योति

दिखने में, बाहर के कलेवर की दृष्टि से अखण्ड ज्योति अन्य पत्रिकाओं की ही भाँति एक मासिक पत्रिका है। बाह्य दृष्टि से कोई इसका मूल्यांकन करना चाहे तो इसे इसी आधार पर आँकेगा। कागज, मुद्रण, छपाई की दृष्टि से भी यह अन्य पत्रिकाओं के समकक्ष ही खड़ी दिखाई पड़ती है। समीक्षा करने वाले शायद ये भी कहें कि अन्य की तुलना में इसमें रंगीन चित्र, मसालेदार कहानियों, पहेलियों, चुटकुलों इत्यादि का भी अभाव है। उस उद्देश्य के लिए पत्रिकाओं को खरीदने वालों के लिए इसमें बहुत कुछ देखने-पढ़ने को संभवतया न भी मिले।

इतने पर भी अखण्ड ज्योति का अपना एक विशिष्ट स्थान व गरिमा है। बिना विज्ञापनों के, बिना सस्ते लेखों के, बिना व्यावसायिक दृष्टिकोण के विगत 8 से ज्यादा दशकों से चली आ रही यह पत्रिका अपने स्थापनाकाल से ही विशिष्ट आदर्शों के लिए जानी जाती रही है। परमपूज्य गुरुदेव की कलम से निकलने वाली यह दिव्य ज्ञान की धारा, प्रारंभ से ही उस उच्चस्तरीय नीति का अंग रही, जहाँ आर्थिक लाभ के स्थान पर उद्देश्य को प्राथमिकता दी गई। इसके लेखों के पीछे निहित भाव भी एक दैवी चेतना से सभी पाठकों को जोड़ना रहा है।

प्रश्न उठता है कि ऐसे में अखण्ड ज्योति जीवित कैसे रही और रहती रहेगी ? दान-अनुदान के रूप में कोई राशि न लेने के बाद भी वह अपना खरच येन-केन प्रकारेण निकाल ही लेती है। ऐसा होने के पीछे का मूल आधार यह है कि अखण्ड ज्योति का उद्देश्य सस्ता मनोरंजन नहीं, वरन लोक-मानस का भावनात्मक परिष्कार करना रहा है। वर्तमान में नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रांति का—व्यक्तित्व के परिष्कार का मार्ग अपनाने वालों को अपनी जीवनयात्रा के दिशा-निर्देशों को प्राप्त करने के लिए ऐसी ही पत्रिकाओं की आवश्यकता है। जितनी तीव्रता से अखण्ड ज्योति का प्रसार घर-घर में हो रहा है, वह देखकर यह सहज ही लगता है कि परमपूज्य गुरुदेव द्वारा देखा गया वो स्वप्न साकार होकर रहेगा। सतयुगी चेतना के अवतरण के लिए अवतरित हुई अखण्ड ज्योति अब वैश्विक स्तर पर अपना आलोक प्रसारित करती दिखाई पड़ेगी—इस सत्य से मुँह मोड़ पाना अब संभव नहीं। ❑

विषय सूची

- अखण्ड ज्योति 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  ज्योतिर्विज्ञान की अद्‌भुत वेधशाला 5
- एक साहसिक अभियान है अध्यात्म 7
- ऐसे बनें अपने आराध्य व गुरु के कृपापात्र 9
- **पर्व विशेष (वसंत पंचमी)**
  महाकाल का घोंसला है शांतिकुंज 12
- हँसी-खुशी से जिएँ यह जीवन 14
- निष्काम कर्म है कर्मयोग 16
- पर्यावरण संकट के भयावह दुष्परिणाम 19
- सत्संग से मिलते हैं सुख-शांति के सूत्र 21
- जनतंत्र में अर्थतंत्र की विडंबना 23
- स्वाध्याय—कैसे जानें स्वयं को ? 25
- ईर्ष्या से ऐसे बचें 28
- जहाँ प्रेम है, वहाँ है आनंद 30
- मन के साधे सब सधै 32
- जीव-जंतुओं के सोने का अद्‌भुत संसार 34
- सादा जीवन उच्च विचार 36
- **चेतना की शिखर यात्रा—221**
  विडंबना और तथ्य 39
- प्रकृति की शक्तिधाराएँ हैं देवता 42
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—142**
  शिक्षा-समस्याओं का निवारण 44
  जीवनशैली के विकार एवं इनका उपचार 47
  युगगीता—249
  आसुरी स्वभाव वाले व्यक्तियों की
  प्रवृत्ति और निवृत्ति 50
- मोबाइल फोन की चुनौतियाँ
  और समाधान 52
- प्लास्टिक की बोतलों से परहेज करें 54
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—2**
  व्यक्तित्व का परिष्कार (गतांक से आगे) 56
- **विश्वविद्यालय परिसर से—188**
  विश्व को सांस्कृतिक अनुदान
  प्रदान करता विश्वविद्यालय 62
- **अपनों से अपनी बात**
  गायत्री-उपासना का दिव्य तीर्थ—शांतिकुंज 64
- पर्व वसंत
  पूज्यवर आपका जन्मदिवस है (कविता) 66

आवरण पृष्ठ परिचय

गायत्री तीर्थ शांतिकुंज की 50 वर्ष की यात्रा

फरवरी-मार्च, 2021 के पर्व-त्योहार

रविवार	07 फरवरी	षट्‌तिला एकादशी 'स्मा.'	गुरुवार	11 मार्च	महाशिवरात्रि
गुरुवार	11 फरवरी	मौनी अमावस्या	सोमवार	15 मार्च	रामकृष्ण परमहंस जयंती/ फुलरियाद्वौज
मंगलवार	16 फरवरी	वसंत पंचमी	शुक्रवार	19 मार्च	सूर्य षष्ठी
बुधवार	17 फरवरी	सूर्य षष्ठी	सोमवार	22 मार्च	होलाष्टक
मंगलवार	23 फरवरी	जया एकादशी	गुरुवार	25 मार्च	आमलकी एकादशी
शनिवार	27 फरवरी	संत रविदास जयंती/माघी पूर्णिमा	रविवार	28 मार्च	होलिका दहन
मंगलवार	09 मार्च	विजया एकादशी	सोमवार	29 मार्च	होली

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶ 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

ज्योतिर्विज्ञान की अद्भुत वेधशाला

ज्योतिषशास्त्र कालनिर्धारण का शास्त्र है। प्रसिद्ध आर्ष विद्वान भास्कराचार्य के अनुसार वेदों एवं उपनिषदों का उद्देश्य मनुष्य को शास्त्रोक्त कार्यों के निष्पादन के लिए प्रेरित करना है। उन्हें समुचित ढंग से करने के लिए काल तथा समय का ज्ञान होना आवश्यक हो जाता है और यह ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। शास्त्रों में काल को स्थूल व सूक्ष्म—दो भागों में विभक्त किया गया है। काल के जिस खंड की गणना किसी यंत्र या उपकरण के माध्यम से संभव हो सके तो उसे स्थूलकाल कहा जाता है और जिस काल की गणना संभव न हो अर्थात वह अपरिमेय हो तो उसे सूक्ष्मकाल कहकर पुकारा जाता है।

मान्यता के अनुसार एक स्वस्थ व्यक्ति को सहजता से एक साँस लेने में जितना समय लगे उसे एक प्राण कहा गया है। आधुनिक गणना के अनुसार यह समय लगभग 4 सेकेण्ड के बराबर का होता है। 6 प्राण को एक पल (लगभग चौबीस सेकेण्ड) और 60 पल = 1 घड़ी और 60 घड़ी के बराबर 1 नक्षत्र दिन माने गए हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो ढाई घड़ी का 1 घंटा, ढाई पल का 1 मिनट और ढाई विपल का 1 सेकेण्ड माने गए हैं।

ज्योतिषीय गणनाएँ नक्षत्र, दिन या नक्षत्र अहोरात्र के अनुसार की जाती रही हैं। यह समयावधि लगभग 23 घंटे 56 मिनट व 4 सेकेण्ड के लगभग होती है। जिस समय पर एक दिन में एक तारा उदय होता है यदि अगले दिन उसको देखा जाए तो वह समय भी लगभग 23 घंटे 56 मिनट व 4 सेकेण्ड के उपरांत आता है। इतनी अवधि में धरती अपनी एक परिक्रमा पूर्ण कर लेती है और यह समय लगभग 60 घड़ी के बराबर या एक नक्षत्र अहोरात्र के बराबर माना जाता है।

यद्यपि दिनों की गणना सूर्य, चंद्र या पृथ्वी के भ्रमण क्रम से जुड़ी होती है तथापि संवत्सर का आकलन बृहस्पति की गति व राशि भोग के अनुसार किया जाता है। प्रत्येक संवत्सर का अपना एक नाम है और 60 संवत्सरों के बाद यह गणना पुन: प्रारंभ हो जाती है।

जैसे वर्तमान संवत्सर का नाम प्रमादी है, इसके उपरांत आनंद; उसके उपरांत राक्षस, फिर अनल, पिंगल इत्यादि के आगमन का क्रम रहेगा। कालगणना के इस क्रम में सूर्य का दोनों दिशाओं में गमन भी गिना जाता है। सूर्य का क्रांतिवृत्त की कर्कादि छह राशियों में दक्षिण की ओर गमन दक्षिणायण है और सूर्य का मकरादि छह राशियों में उत्तर की ओर गमन उत्तरायण कहलाता है।

21 मार्च को वसंत संपात से 90 डिगरी आगे चलकर 21 जून को जब सूर्य दक्षिणायण बिंदु पर पहुँचता है तो उस दिन से दक्षिणायण का प्रारंभ माना जाता है। इसी प्रकार दक्षिणायण बिंदु से 90 डिगरी आगे जाकर सूर्य शरद संपात पर 23 सितंबर के लगभग पहुँचता है, तब शरद ऋतु की शुरुआत मानी जाती है। इससे फिर 90 डिगरी आगे चलकर 22 दिसंबर के दिन जब सूर्य उत्तराभिमुख होकर चलने लगता है, तब यह ही समय उत्तरायण का कहलाता है। इसके बाद फिर सूर्य 90 डिगरी आगे चलकर वसंत संपात तक पहुँच जाता है।

भारतीय ज्योतिष के अनुसार 12 मास—चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ व फाल्गुन हैं। इन मासों के नाम इनकी अवधि में पड़ने वाली पूर्णिमा को पड़ने वाले नक्षत्रों के आधार पर रखे गए हैं; जैसे चित्रा से चैत्र, विशाखा से वैशाख आदि। भारतीय पंचांगों में मासों की गणना चांद्र मास से एवं वर्षों की गणना सौर मास से की गई है। चूँकि बाहर चांद्र मासों का वर्ष सौर वर्ष से लगभग 10 दिन छोटा होता है; अत: प्रत्येक तीन वर्ष में जब यह अंतर एक मास के बराबर हो जाता है, तब उस अतिरिक्त माह को अधिकमास या पुरुषोत्तममास कहने की परंपरा है।

यहाँ यह लंबा व विस्तृत कालगणना परिचय देने के पीछे का कारण यह है कि भारतीय ज्ञान की इस अद्भुत विरासत की पुनर्प्रतिष्ठा परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज में वेधोपयोगी यंत्रों की स्थापना के साथ की। वैसे तो प्राचीन विद्वानों में महेंद्रसुरि से लेकर चक्रधर इत्यादि मनीषियों ने

कालगणना यंत्रों के विषय में लिखा है तथापि भास्कराचार्य ने सर्वतोभद्र यंत्र से लेकर गोलयंत्र, चक्र, चाप, तुरीय, नाड़ीवलय, घटिका, शंकु, फलक इत्यादि का अद्‌भुत वर्णन किया है। इसी क्रम में ब्रह्मगुप्त, कमलाकर, वाराहमिहिर आदि विद्वज्जनों ने यंत्रों के निर्माण की विधि का उल्लेख भी किया है।

परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज के पवित्र प्रांगण में इन्हीं यंत्रों की पुनर्स्थापना कराई, ताकि भारतीय ज्ञान की इस अभूतपूर्व विरासत से जनसामान्य को परिचित कराया जा सके। बाद में इन यंत्रों को देव संस्कृति विश्वविद्यालय के परिसर में स्थापित कर दिया गया। इनमें से पहला यंत्र नाड़ीवलय के नाम से प्रसिद्ध है। ध्रुव से 90 डिगरी की दूरी पर आकाश में जो वृत्त बनता है; उसे विषुवद् वृत्त या नाड़ीवलय वृत्त के नाम से जाना जाता है। यह वलय आकाश को उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्धों में विभक्त करता है। इसी वृत्त का व्यास पृथ्वी पर भूमध्य रेखा के नाम से पुकारा जाता रहा है।

ध्रुवोन्नति से अक्षांश का आकलन किया जाता है। हरिद्वार में उत्तरी ध्रुव क्षितिज से 20 अंश ऊपर उठा होने के कारण हरिद्वार का 20.0 उत्तर अक्षांश कहलाता है। मॉरीशस में दक्षिणी ध्रुव क्षितिज से ऊपर उठा होने के कारण मॉरीशस का दक्षिणी अक्षांश कहलाता है। इस नाड़ीवलय यंत्र के माध्यम से ग्रह, नक्षत्रों का गोलज्ञान संपन्न किया जाता है। दक्षिण की तरफ खड़े होकर नाड़ीवलय से सटकर आकाश को देखने पर आकाशीय दक्षिण गोल के ग्रह-नक्षत्रादि दिखाई पड़ते हैं। इस यंत्र के द्वारा स्पष्टांतर, वेलांतर एवं मध्यमांतर का भी ज्ञान संभव है। परमपूज्य गुरुदेव द्वारा स्थापित किए गए इस यंत्र को आज देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रांगण में देखा जा सकता है।

इस क्रम में दूसरा ऐसा यंत्र सम्राट यंत्र है; जिसका निर्माण विषुवद्‌वृत्तीय धरातल में होता है। अभीष्ट स्थान में विषुवद् दिन के स्पष्ट मध्याह्नकाल में अभीष्ट माप के शंकु की जो छाया उपलब्ध होती है, उसे पल्भा कहा जाता है। विषुवद् दिन आधुनिक काल में 21 मार्च या 23 सितंबर को आता है।

इस दिन ही क्रमशः सायनमेष व सायनतुला राशि में सूर्य का संक्रमण होता है तथा इस दिन ही विषुवद्‌वृत्त पर सूर्य का भ्रमण होने से प्रत्येक स्थान पर दिन एवं रात्रि का मान बराबर होता है। विषुवद्‌वृत्त व तत्समानांतर अहोरात्र वृत्तों में कालगणना घटायात्मक हो जाती है। इसलिए यह सम्राट यंत्र घटायात्मक तथा होरात्मक कालसूचक यंत्र है। इसके द्वारा स्थानीय समय का भी ज्ञान तथा आकलन संभव हो पाता है।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा इसी क्रम में याम्योत्तरीय चापयंत्र, शंकुयंत्र, धीयंत्र इत्यादि का भी निर्माण कराया गया, ताकि उनके माध्यम से सांपातिक काल निकालकर पंचांगों के निर्माण का कार्य संपन्न किया जा सके। वर्तमान युग में यह कार्य इतना अभूतपूर्व है कि राष्ट्रपति सम्मान प्राप्त महामहोपाध्याय पंडित कल्याण दत्त शर्मा जी द्वारा परमपूज्य गुरुदेव द्वारा स्थापित वेधशाला पर एक विशिष्ट पुस्तक—'ज्योतिर्विज्ञान की वेधशाला' भी लिखी गई; जिसके पूरक ग्रंथ के रूप में शांतिकुंज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता श्री महेंद्र शर्मा जी द्वारा 'रहस्यमय ब्रह्मांड एवं हमारा सौर परिवार' नामक ग्रंथ की रचना की गई।

ये दोनों ही पुस्तकें शांतिकुंज के पुस्तकालय में उपलब्ध हैं। ज्योतिर्विज्ञान के विषय का महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन इनमें है। आज इस दिशा में एक गंभीर शोधकार्य करने की माँग वर्तमान समय करता हुआ नजर आता है। ❑

इन दिनों सबसे बड़ा परमार्थ लोक-मानस का परिष्कार ही है। इस क्षेत्र में घुसी विकृतियों के कारण ही दरिद्रता, रुग्णता, आपदा जैसी पिछड़ेपन की जन्मदात्री हीनताएँ मनुष्य के सिर पर चढ़ती हैं। आज की समस्त समस्याएँ आर्थिक संकट के कारण ही उत्पन्न हुई हैं। उन सबका एक ही समाधान है—जन-मानस का परिष्कार, सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन। हमें इन्हीं पुण्य प्रयोजनों को प्रमुखता देनी चाहिए।

—परमपूज्य गुरुदेव

एक साहसिक अभियान है अध्यात्म

अध्यात्म स्वभाव की निम्न प्रकृति एवं उच्च प्रकृति के मध्य चलने वाला सतत संघर्ष-पथ है, जिसमें अपनी दुर्बलताओं के विरुद्ध एक युद्ध छेड़ना पड़ता है तथा हर पल सजग साधना में निमग्न होना पड़ता है। हम उस पावन भूमि में पहुँचना चाहते हैं, अपना अधिकार चाहते हैं, उसकी आजादी चाहते हैं, जो अभी षड्रिपुओं के कब्जे में है और ऐसा कर पाना सरल नहीं है। यह एक साहस, दुस्साहस की माँग करता है; क्योंकि यहाँ जन्म-जन्मांतरों से पड़ी आदतों, जड़ जमाए संस्कारों के विरुद्ध जूझना पड़ता है, समाज के प्रचलित प्रवाह के विपरीत चलना पड़ता है। सनातन धर्म में इसकी चरम अवस्था को मुक्ति, मोक्ष, कैवल्य आदि नाम दिए गए। भगवान बुद्ध ने इसे निर्वाण का नाम दिया।

स्वामी विवेकानंद अध्यात्म को अनंत आत्मा और अनंत परमात्मा के बीच का संबंध मानते थे। यह परमात्मा के साथ अपना सीधा संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया है, जिसको भिन्न-भिन्न धर्मों में अलग-अलग नाम दिए, यथा—गॉड, अल्लाह, ईश्वर, ताओ, जेहोवा, वाहेगुरु आदि। वह भावातीत भी है और अंतर्यामी भी। वह बाहर भी व्याप्त है और अंदर हमारी हृदयगुहा में भी। यह एक ऐसा खजाना है, जो हमारे दिल में छिपा पड़ा है और हमें इसकी सुध नहीं। हम इसे बाहर खोजते फिर रहे हैं। रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि अधिकांश लोग बाहर पसरी पड़ी सृष्टि में अधिक रुचि लेते हैं, न कि इसके रचयिता में। यह इनसान की फितरत है कि वह सत्य की कद्र नहीं करता, बल्कि इसकी छाया के पीछे भागता है।

यह मनुष्य का दुर्भाग्य है कि वह सांसारिक माया के पीछे यात्रा कर परमात्मारूपी वास्तविक सत्य को भूल जाता है। बहुत कम ही लोग होते हैं, जो जीवन के परम सत्य को जानने की चेष्टा करते हैं, उसकी चिंता करते हैं। अधिकांश तो चमत्कार के पीछे भाग रहे होते हैं। इस दौड़ में भगवान की चर्चा-प्रवचन भी बहुत होते हैं; लिखा-पढ़ी भी बहुत होती है; भजन-कीर्तन भी बहुत होते हैं, लेकिन सही में उनको पाने की गंभीर चेष्टा कितनी होती है, यह विचारणीय है।

यदि होती तो जीवन इतनी विपन्न अवस्था में नहीं पड़ा होता, वरन जीवन में कहीं शांति, प्रसन्नता और आनंद के प्रसून खिल रहे होते। ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन—यह भारतीय हो या पश्चिमी परंपरा, धर्म-अध्यात्म एवं दर्शन का आदर्श रहा है। भारत में ऐसे व्यक्ति को योगी कहते हैं और पश्चिम में गुह्यवादी या मिस्टिक। योगी या गुह्यवादी परम सत्य का एकांतिक अभीप्सु होता है, अनन्य भक्त होता है और ज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहता है। हालाँकि इनकी संख्या गिनी-चुनी ही होती है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण इसी सत्य को व्यक्त करते हैं कि हजारों लोगों में कोई एक पूर्णता की चाह रखता है, कोशिश करता है और इनमें से भी कोई एक ही उस सत्य तक पहुँच पाता है। (अध्याय 7)

वास्तव में मनुष्य प्राय: ईश्वर की परवाह नहीं करता। वह तो इसकी छाया के पीछे भागता फिरता है। राह में गुजरता हुआ राही एक सुंदर बगीचा मिलने पर इसकी सुंदरता से मोहित हो जाता है, इसको निहारने में मग्न हो जाता है। उसे तब यह सुध नहीं रहती कि इसके मालिक से मिला जाए। यही हाल संसार में लिप्त व्यक्ति का होता है, जो इसकी चकाचौंध में ही खोया फिरता है, ईश्वर की ओर प्रवृत्त ही नहीं हो पाता। जीवात्मा का सच्चा उद्देश्य सत्य को पाना है, अपने वास्तविक स्वरूप को जानना है, न कि सांसारिक चकाचौंध में इधर-उधर भटकते रहना और अपने आराध्य, इष्ट और जीवन ध्येय को भूले फिरना। इस रूप में अध्यात्म एक साहसिक अभियान है, पर्वतारोहण जैसा कठिन कार्य, जो अपनी पूरी तैयारी माँगता है।

गुरु शिष्य की पहले परख करता है कि वह इसके लिए तैयार है भी या नहीं? वह उसके तन-मन की, उसके जीवट, उसकी पात्रता की परीक्षा लेता है। इसके बाद उचित मार्गदर्शन करता है। पर्वतारोही पर्वत के बीच नीचे घाटियों के मनोहारी दृश्य में खो सकता है, या चोटियों की भव्यता को निहारते हुए ऊपर चढ़ना भूल सकता है। ऐसे ही आध्यात्मिक जीवन में ऋद्धि-सिद्धियों के आकर्षण—पथ के अवरोध बनकर सामने खड़े होते हैं। शरीर का हलका हो

जाना, हवा में उड़ने की क्षमता आ जाना, दूसरों के मन को पढ़ने की शक्ति का जागना, दूर-श्रवण, दूर-दर्शन आदि। जो इनसे पार हो पाता है, वही सत्य को जान पाता है।

ये प्रलोभन एक तरह से अग्निपरीक्षाओं की तरह साधक के जीवन में आते हैं और अंतिम समय तक उसे कसौटी पर कसते रहते हैं। बौद्ध धर्म में इसे मार, ईसाई धर्म में शैतान, तथा रामकृष्ण परमहंस इसे पापपुरुष कहा करते थे, जो दुर्बुद्धि के रूप में साधक को किसी भी पल पथभ्रष्ट कर सकते हैं। निम्न प्रकृति कभी भी उभरकर सारे किए धरे पर पानी फेर सकती है। देर-सबेर हर साधक को इन सूक्ष्म अवरोधों की अग्निपरीक्षाओं से गुजरना पड़ता है। आश्चर्य नहीं कि स्वामी विवेकानंद के शब्दों में, धर्म-अध्यात्म मार्ग के ज्यादातर साधक तो पाखंडी हो जाते हैं। कुछ सिद्धियों के मिलने पर चमत्कारी बाबा का रूप धारण कर लेते हैं। विक्षिप्त हो जाते हैं।

यही स्थिति इन अधीर साधकों की होती है। इसके लिए अपने स्नायु संस्थान, नस-नाड़ियों एवं मन:संस्थान को फौलादी बनाना पड़ता है। बहुत कम साधक ही लक्ष्य तक पहुँच पाते हैं, जो क्रमिक रूप में स्वयं को शुद्ध करते हुए, अपनी पात्रता विकसित करते हुए आगे बढ़ते हैं एवं जो स्वयं पर असाधारण नियंत्रण रखते हुए, राह के अवरोधों को पार करते हुए आगे बढ़ते हैं। आश्चर्य नहीं कि हर आध्यात्मिक महापुरुष राह के नश्वर सुखों, कामनाओं, वासनाओं और तृष्णा से बचने की चेतावनी देते रहे हैं। निस्संदेह इसके लिए पर्याप्त प्रशिक्षण से गुजरना पड़ता है। इस मार्ग के लिए योग्यता का अभिवर्द्धन करना पड़ता है। विवेक, वैराग्य, त्याग, अनासक्ति जैसे सद्गुणों का अभ्यास करना पड़ता है; क्योंकि कामनाओं में अटकी नाव आगे नहीं बढ़ पाती।

इंद्रिय संयम, मन की स्थिरता-समता को विकसित करना पड़ता है, जो बाहर के प्रलोभनों व दबावों से प्रभावित न होती हो। स्वयं पर श्रद्धा और साथ ही गुरु की बातों पर असीम आस्था धारण करनी पड़ती है और मुक्ति की तीव्र अभीप्सा जाग्रत रखते हुए समर्पण का अभ्यास करना होता है। वस्तुत: यह तो एकांत की एकांत तक उड़ान है। राह में पवित्र मन ही साधक का गुरु बन जाता है। हृदय में स्थित सद्गुरु के निर्देश को सुनने की क्षमता विकसित होती है। इसके लिए नियमित ध्यान का अभ्यास करना पड़ता है, जो प्रारंभ में सरल नहीं रहता। इसके लिए जप का सहारा लेते हुए अभ्यास किया जाता है।

धीरे-धीरे मन इष्ट में लय होने लगता है, धारणा शक्ति विकसित होने लगती है और फिर ध्यान की अवस्था आती है। इसके लिए लंबा अभ्यास, दीर्घकालीन तैयारी अपेक्षित रहती है, फिर एक दिन संवाद की स्थिति बनती है तथा आनंद का निर्झर भीतर से फूट पड़ता है। ये पल कितनी कठिनाइयों, दु:ख, कष्ट एवं पीड़ा के आँधी—तूफानों से गुजरने के बाद आते हैं—यह भुक्तभोगी ही जानते हैं।

यह अध्यात्म पथ हर मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है, बस, आवश्यकता गहराई में उतरने की है, सतह पर इंद्रिय सुखों में तैरने के बजाय ब्रह्म के सागर में गोता लगाने की है और सतत अभ्यास करते हुए धीरे-धीरे अपनी पात्रता विकसित करते हुए जीवन की सार्थकता, सच्चे सुख और आनंद को पाने की है। क्यों इसके लिए संसार में अनावश्यक रूप से उलझते हुए अनंत समय का इंतजार करें? क्यों न स्वयं को समेटते हुए आज अभी से इस महान कार्य में जुट जाएँ?

❑

महान का अर्थ है—विशाल, व्यापक। जो मनुष्य अपने शारीरिक, मानसिक और पारिवारिक कर्त्तव्यों से आगे बढ़कर विश्वमानव के उत्तरदायित्वों को वहन करने के लिए अग्रसर होता है, मानवीय कर्त्तव्यों से आगे के देवकर्त्तव्यों को वहन करने के लिए तत्पर होता है, वह महात्मा है। महात्मा अपने लिए नहीं सोचता, विराट के लिए सोचता है। अपने लिए नहीं करता, विराट के लिए करता है। अपने लिए जीवित नहीं रहता, विराट के लिए जीता है।

—परमपूज्य गुरुदेव

ऐसे बनें अपने आराध्य व गुरु के कृपापात्र

एक शिला पर आसीन आचार्य शंकर अखंड समाधि में डूबे थे। समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार कर वे स्वयं भी ब्रह्मरूप हो चुके थे। वे ब्रह्म के साथ अपनी आत्मा की एकरूपता की परम आनंदमयी स्थिति को प्राप्त हो चुके थे। ब्रह्ममय आनंद की अनुपम व अद्वितीय आभा से उनका मुखमंडल दीप्त था, प्रदीप्त था। उनके इस परम तेजस्वी व ब्राह्मी रूप की एक झलकमात्र किसी को भी अपनी ओर आकर्षित करने के लिए काफी थी। उधर एक बालब्रह्मचारी बहुत समय से आचार्य शंकर के समाधि से जागने की प्रतीक्षा में पलकें बिछाए बैठा था। जैसे ही आचार्य शंकर ने समाधि से जागकर अपनी आँखें खोलीं, वैसे ही वह बालक सीधे आचार्य शंकर के चरणों में आकर झुक गया।

आचार्य शंकर ने उस बालक के भीतर बह रहे सच्चे भगवत्प्रेम को पलभर में ही भाँप लिया। उन्होंने स्नेहपूर्वक पूछा—बालक! तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? बालक होते हुए भी तुम्हारे भीतर से कितनी धीरता-गंभीरता छलक रही है। तुम्हारे अंतरंग में कैसा ईश्वरीय प्रेम-प्रवाह उमड़ रहा है। उस बालक ने कहा—"हे प्रभु! मेरा नाम सनंदन है और मैं उस प्रदेश से आया हूँ, जहाँ कावेरी नदी बहती है। ऋषि-महात्माओं के दर्शन की अभिलाषा से ही मैं घर से दूर यहाँ तक आया हूँ। रास्ते में जाते हुए जब मैंने एकाएक आपके प्रेममयी, तेजोमयी दिव्य स्वरूप को देखा तो मैं उसे बस देखता ही रह गया। मानो मेरी आँखें जन्म-जन्म से इसी दिव्यरूप के दर्शन को प्यासी थीं।"

वह बालक आगे बोला—"आपका दर्शन पाते ही मुझे ऐसा अनुभव होने लगा मानो मेरी मंजिल आप ही हैं। हे गुरुदेव! मैं आपकी शरण में आया हूँ। मुझे मेरे गुण-दोषों सहित स्वीकार कीजिए। मैं इस संसार-सागर से पार होना चाहता हूँ। प्रभु! सारा संसार काम-क्रोध, लोभ-मोह के बंधन में बँधा है। मेरा मन इन सभी विकारों से मुक्त हो जाए। मैं आत्मसाक्षात्कार को उपलब्ध होकर निरंतर आनंद में रमण करता रहूँ। मेरी यही अभिलाषा है, जो आपकी कृपा से पूरी हो सकती है। निस्संदेह आप ही मेरे आराध्य गुरु हैं। आप मुझे स्वीकार करें गुरुदेव। यदि आप नहीं तो इस मायावी दुनिया में मेरा दूसरा कोई नहीं।"

बालक सनंदन की सच्ची भक्ति व प्रेम को देखकर आचार्य शंकर बहुत प्रसन्न हुए। यदि ईश्वर को पाने की, आराध्य को पाने की, गुरु को पाने की ऐसी उत्कट व निष्कपट अभिलाषा हो तो स्वयं ईश्वर ही साधक के लिए गुरुमिलन व ईश्वरप्राप्ति का मार्ग सुलभ कर देते हैं। स्वयं प्रकृति भी ऐसे साधकों को उनकी मंजिल तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त कर देती है। आज आचार्य शंकर जैसे परमगुरु को पाकर बालक सनंदन की मानो जन्म-जन्मांतरों की प्रतीक्षा पूरी हो रही थी। शिष्य में यदि सच्ची लगन हो, सच्ची प्यास हो तो सद्गुरु भी उसे अवश्य ही स्वीकार करते हैं। आचार्य शंकर ने सहर्ष ही सनंदन को अपने साथ रहने की अनुमति दे दी। गुरु की कृपा से सनंदन की पवित्रता व अभीप्सा और भी अधिक बढ़ गई।

आचार्यप्रवर ने पात्रता देखकर शीघ्र ही बालक सनंदन को संन्यास दीक्षा में दीक्षित किया। कहते हैं कि सनंदन शंकराचार्य के प्रथम दीक्षित शिष्य थे। वाराणसी में रहते हुए अनेक साधक, साधु, ऋषि, विद्वान आदि आचार्य शंकर की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने आचार्य से विधिवत् संन्यास ग्रहण किया। आचार्य शंकर के शिष्य बनकर वे सभी स्वयं को कृतार्थ मानने लगे, पर गुरु के लिए आनंद की स्थिति तो तब आती है, जब वे अपने शिष्यों की प्रगति-पुरुषार्थ को नित्य नई ऊँचाई की ओर अग्रसर होते हुए देखते हैं। दूसरों की देखा-देखी दीक्षा लेने वालों की भी कहाँ कमी होती है, परंतु महत्त्वपूर्ण तो दीक्षा धर्म को निभाना होता है, शिष्य धर्म को निभाना होता है और तभी गुरु द्वारा पाई गई दीक्षा सफल व फलीभूत होती है। आगे चलकर आचार्य के शिष्यगणों में भी वृद्धि हुई, पर उनमें से सनंदन की गुरुभक्ति निस्संदेह एक ऊँची स्थिति को प्राप्त थी।

अपनी अलौकिक प्रतिभा, पवित्रता, प्रेम, विद्वत्ता व अनन्य गुरुभक्ति के कारण सनंदन अपने गुरु के परम प्रिय शिष्य थे। आचार्य की उन पर विशेष कृपा थी। उनका प्रिय

शिष्य होने के कारण बाकी शिष्य सनंदन से ईर्ष्या करने लगे। शिष्यों को सनंदन के प्रति आचार्य का विशेष प्रेम तो दिखाई देता था, लेकिन सनंदन की बेशर्त भक्ति भला कहाँ दिखाई देती थी? अक्सर यह गलती शिष्यों से हो जाया करती है; क्योंकि वे अपने गुरु के व्यवहार को भी सामान्य मानवीय दृष्टि से देखते हैं, पर सच तो यह है कि गुरु सभी शिष्यों का हित समान रूप से ही चाहते हैं। परंतु अपनी गहरी व अगाध आस्था एवं श्रद्धा तथा पात्रता के कारण ही कोई शिष्य अपने गुरु का विशेष प्रिय बन पाता है। इसमें गुरु की नहीं, शिष्य की भूमिका ही महत्त्वपूर्ण होती है।

जिस शिष्य में पवित्रता चंद्रमा की भाँति चमक-दमक रही हो एवं जिस शिष्य के हृदय में प्रेम उमड़-घुमड़ रहा हो, जिस शिष्य में गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा हो, भक्ति हो एवं जिस शिष्य में आज्ञापालन, कर्त्तव्यपालन की तत्परता हो तो फिर ऐसे शिष्यों को देखकर गुरु को विशेष प्रसन्नता तो होगी ही। फिर ऐसे साधक व सच्चे शिष्य अपने गुरु व आराध्य की विशेष कृपा के अधिकारी तो बनेंगे ही। ईश्वर व गुरु किसी के साथ पक्षपात नहीं करते, वरन अपनी निजी पात्रता के बल पर ही कोई शिष्य अपने गुरु व इष्ट का विशेष प्रेमपात्र, कृपापात्र बन जाता है।

इस संदर्भ में युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने ठीक ही कहा है कि ईश्वर का प्यार केवल सदाचारी व कर्त्तव्यपरायणों के लिए सुरक्षित है। गुरु तो चाहते ही हैं कि उनके सभी शिष्य साधना के शीर्ष तक पहुँचकर अपने जीवनलक्ष्य को प्राप्त करें। हम साधना में तत्पर न होने के कारण ही गुरु के प्रेम पर भी शंका करने लगते हैं। आचार्य शंकर यह भाँप गए कि सनंदन के प्रति मेरे प्रेम को देखकर अन्य शिष्यों के मन में भी कुछ भ्रांतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। सो उन्होंने एक युक्ति सोची। एक दिन उन्होंने अपने सभी शिष्यों को सनंदन की गुरुभक्ति की पहचान कराने का फैसला किया।

एक दिन की बात है कि सनंदन किसी काम से अलकनंदा नदी के उस पार गए थे। नदी पार करने के लिए कुछ दूर पर एक पुल था। वे उसी पुल से गए थे। आचार्यश्री अपने अन्य शिष्यों के साथ नदी किनारे बैठे थे। नदी का प्रवाह बड़ा प्रबल था। तभी आचार्यश्री ने बड़े ही करुण स्वर में सनंदन को पुकारना प्रारंभ किया--सनंदन, सनंदन जल्दी आओ। गुरु की करुण पुकार सुनकर सनंदन बेचैन हो गए। उन्होंने सोचा, गुरुदेव जरूर किसी मुसीबत में फँस गए हैं। मुझे तुरंत ही उनके सम्मुख उपस्थित होना चाहिए। अगर मैंने नदी पार करने के लिए पुल का रास्ता अपनाया, तो देर हो जाएगी।

मन में इस भाव के साथ कि संसाररूपी भवसागर को पार कराने वाले गुरु इतनी-सी नदी तो अराम से पार करवा देंगे, उन्होंने उफनती अलकनंदा में छलाँग लगा दी। जिस प्रवाह में अच्छे-अच्छे तैराक भी घुटने टेक देते, वहाँ सनंदन ने अपने प्राणों की परवाह तक नहीं की। शिष्यों ने जब सनंदन को नदी में कूदते हुए देखा तो उसकी मृत्यु को अटल मानकर उन्होंने हाहाकार मचा दिया, किंतु सनंदन की असीम गुरुभक्ति देखकर अलकनंदा भी उनकी मदद को दौड़ पड़ीं। उनने सनंदन के प्रत्येक कदम के नीचे कमल के फूल खिला दिए। जिन पर पैर रखते हुए वे तुरंत ही आचार्य शंकर के चरणकमलों में पहुँच गए।

शिष्यगण इस अलौकिक घटना को देखकर अवाक् रह गए। सभी शिष्य चुपचाप सिर झुकाए अपनी गलती का एहसास करने लगे। आचार्य ने गद्गद हृदय से कहा— "आज से सनंदन पद्मपाद के नाम से प्रसिद्ध होंगे।" तब से लोग उन्हें उसी नाम से जानने लगे। यहाँ पर हमें एक साधक व शिष्य के रूप में यह समझने की आवश्यकता है कि यहाँ पर गुरु की पुकार, गुरु आज्ञा का प्रतीक है। यदि हम सच्चे शिष्य हैं तो हर हाल में हमें गुरु की आज्ञा के पालन में निरत रहना चाहिए; क्योंकि सनंदन का उफनती नदी में छलाँग लगाना हर हाल में गुरु के आज्ञापालन करने की ओर ही इशारा करता है।

सनंदन ने गुरु की आज्ञा को इतनी गंभीरता से लिया कि अपनी जान तक की भी परवाह नहीं की और यह भी नहीं सोचा कि उस उफनती नदी में कहीं वो डूब न जाएँ— ऐसा विचार उनके मन में नहीं आया। अन्य शिष्यों के होते हुए भी गुरुदेव ने इतनी बेसब्री से मुझे क्यों बुलाया? उन्होंने ऐसी कोई शंका भी अपने गुरु पर नहीं की। उन्हें तो बस, एक ही बात समझ आ रही थी— गुरु ने मुझे बुलाया है तो जरूर कोई कारण होगा और मुझे हर हाल में शीघ्र ही उनके पास पहुँचना होगा। जब निश्छल, निर्मल, निष्कपट व नि:शंक मन से कोई कार्य किया जाता है तो प्रकृति भी चारों ओर से व्यक्ति की मदद करने में जुट जाती है। ऐसे में शिष्य की, साधक की, इनसान की सुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो उठती हैं

और फिर असंभव कार्य भी संभव हो उठते हैं। नदी में कमल का खिलना या एकाएक नदी का उफान कम हो जाना, छट जाना भी तो इसी ओर इशारा करता है।

गुरुकृपा ही भवसागर को पार करने का एकमात्र उपाय है। यह बात भी आचार्य शंकर सभी को सनंदन को निमित्त बनाकर बताना चाहते थे। उन्होंने इस कार्य के लिए सनंदन को निमित्त बनाया; क्योंकि उन्हें अपने गुरु पर दृढ़ विश्वास था। अपने दृढ़ विश्वास के कारण ही वे उफनती नदी में कूद पड़े और अपने उसी दृढ़ विश्वास व गुरु के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण वे सकुशल नदी पार कर गए। शिष्य गुरु के प्रति ऐसे ही दृढ़ विश्वास से भवसागर से भी पार हो जाता है।

यह घटना हमें यही सिखाती है व यही समझाती है। नदी में कमल का खिलना शिष्य के हृदयकमल के खिलने का ही प्रतीक है। मन को निर्मल, निर्विकारी, आज्ञाकारी, शंकामुक्त व अनुरागमुक्त बनाने से ही शिष्य का हृदयकमल खिलता है और फिर ऐसे ही चमत्कार घटते हैं। अस्तु हमें भी अपने मन को निर्मल, निर्विकारी व आज्ञाकारी बनाना है, जिससे हमारे भी हृदयकमल खिल उठें, हमारी सुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो सकें और हम ईश्वर व आराध्य के कृपापात्र बन सकें। ❑

महाभारत का युद्ध निश्चित हो गया था। दोनों पक्ष अपने-अपने सहायकों को एकत्र करने में लग गए थे। इसी क्रम में एक दिन दुर्योधन भगवान श्रीकृष्ण के पास युद्ध में सहायता माँगने हेतु पहुँचे। श्रीकृष्ण उस समय विश्राम कर रहे थे। दुर्योधन उनकी शय्या के सिरहाने बैठ गए। तभी अर्जुन भी इसी उद्देश्य से श्रीकृष्ण के पास पहुँचे। वह उन्हें सोया हुआ देखकर उनके चरणों के पास खड़े हो गए। जागने पर श्रीकृष्ण ने अपने सम्मुख अर्जुन को देखा और उनके आने का उद्देश्य पूछा। दुर्योधन तुरंत बोले—"वासुदेव! पहले मैं आया हूँ।" तब जनार्दन ने पीछे देखकर दुर्योधन से आने का कारण पूछा। दुर्योधन ने और फिर अर्जुन दोनों ने अपने आने का उद्देश्य श्रीकृष्ण को बताया। इस पर श्रीकृष्ण बोले—"मैं इस युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊँगा। एक ओर मैं शस्त्रविहीन रहूँगा और दूसरी ओर मेरी सेना रहेगी।" अर्जुन ने निःशस्त्र श्रीकृष्ण को और दुर्योधन ने सेना को चुना। दुर्योधन प्रसन्न होकर चले गए। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा—"तुमने मुझको क्यों चुना, सेना क्यों नहीं ली?" तब अर्जुन बोले—"हमारी जय हो या न हो, हम आपको छोड़कर नहीं रह सकते।" वासुदेव ने हँसकर पूछा—"मुझसे क्या कराओगे?" अर्जुन ने हँसते हुए कहा—"आप मेरे रथ की डोर हाथ में लीजिए और मुझे निश्चिंत कर दीजिए।" जो अपने जीवन-रथ की डोर भगवान के हाथ में सौंप देते हैं, उनकी लौकिक तथा पारमार्थिक विजय निश्चित है।

पर्व विशेष (वसंत पंचमी)

महाकाल का घोंसला है शांतिकुंज

मनुष्य के व्यक्तित्व के तीन ही प्रमुख आयाम हैं—विचार, भावनाएँ एवं कर्म। मन का कार्य सोचने-विचारने का है, अंतरंग भावनाओं के निष्पादन का कार्य करता है तो वहीं शरीर, कर्मों को करने का निमित्त बन जाता है। महापुरुषों के व्यक्तित्व में ये तीनों ही आयाम शिखर पर उपस्थित होते हैं। यह ही कारण था कि परमपूज्य गुरुदेव का सामीप्य पाते ही चंचल-से-चंचल व्यक्ति का मन शांत हो जाता था; भावनाएँ सकारात्मक हो उठती थीं एवं कर्म, ईश्वर को समर्पित होने की पुकार करने लगते थे।

ऐसा ही कुछ उस दिन गुजरात से आए एक कार्यकर्त्ता को अनुभव हुआ, जब वे परमपूज्य गुरुदेव से मिलने उनके कक्ष में पहुँचे। प्रातःकाल का समय था। होली के निकट के दिन थे, इसलिए वातावरण में अभी भी थोड़ी शीतलता व्याप्त थी। परमपूज्य गुरुदेव आधी बाँह का एक स्वेटर पहने अपनी छत पर एक कुरसी पर बैठे थे। यह घटना संभवतया सन् 1974 या 75 की रही होगी। वे कार्यकर्त्ता परमपूज्य गुरुदेव से उन दिनों से जुड़े हुए थे, जब पूज्य गुरुदेव ने मथुरा में सहस्रकुंडीय गायत्री महायज्ञ को संपन्न किया था। तब से वे निरंतर परमपूज्य गुरुदेव से मिलने मथुरा आया-जाया करते थे।

उन सज्जन ने परमपूज्य गुरुदेव को देखते ही उनके चरण छूकर उनसे आशीर्वाद लिया। वे अंतिम बार परमपूज्य गुरुदेव से तब मिले थे, जब पूज्य गुरुदेव मथुरा में ही थे। उसी दिन वे पहली बार हरिद्वार, शांतिकुंज पूज्य गुरुदेव से मिलने पहुँचे थे। उन्हें देखते ही गुरुदेव ने प्रेम से उनके सिर पर हाथ रखा और उनसे घर के सभी सदस्यों की कुशलक्षेम के विषय में पूछा। फिर गुरुदेव ने प्रेम से पूछा—"बेटा! बहुत दिनों के बाद मिलने आया। घर में सब ठीक तो है न।" वे बोले—"जी गुरुदेव! आपके आशीर्वाद से सब ठीक हैं। मथुरा की तुलना में हरिद्वार थोड़ा ज्यादा दूर है, इसलिए जल्दी न आ सका। यह आप मथुरा छोड़कर इतनी दूर हरिद्वार क्यों आ गए गुरुदेव?"

उनकी इस बात पर परमपूज्य गुरुदेव थोड़ा मुस्कराए, फिर गंभीर होकर बोले—"बेटा! भगवान का घर थोड़ा दूर भी हो तो वहाँ जाने का कष्ट उठाना सौभाग्य में गिना जाता है और यह शांतिकुंज दिखने में छोटा-सा आश्रम है, पर वस्तुस्थिति में भगवान महाकाल का साक्षात् निवास स्थान है।" पूज्य गुरुदेव थोड़ा रुके व फिर कहने लगे—"यह शांतिकुंज जो है, यह ऋषि परंपरा के पुनर्जागरण का केंद्र स्थान है बेटा! जब हम पहली बार हिमालय गए थे और सूक्ष्म शरीरधारी ऋषिसत्ताओं से हमारी भेंट हुई थी तो उनमें से प्रत्येक ने अपनी पीड़ा व्यक्त की थी कि उनके द्वारा प्रारंभ की गई आर्ष परंपराएँ लुप्तप्राय हो गई हैं। उन्हीं परंपराओं को पुनर्स्थापित करने के लिए इस शांतिकुंज आश्रम का निर्माण हमने कराया है।"

पूज्य गुरुदेव ने आगे कहना प्रारंभ किया—"तुम्हें याद है न कि गायत्री मंत्र के मंत्रद्रष्टा ऋषि कौन हैं?" उन कार्यकर्त्ता के मुँह से निकला—"जी गुरुदेव! महर्षि विश्वामित्र।" पूज्य गुरुदेव बोले—"बेटा! उन्हीं ऋषि विश्वामित्र की तपस्थली यह शांतिकुंज क्षेत्र है। सप्त सरोवर के क्षेत्र में कभी सप्तर्षियों ने तपस्या की थी। उसी ऋषि परंपरा के आधुनिक प्रतीक के रूप में यह शांतिकुंज का आश्रम है। महर्षि विश्वामित्र की तरह यहाँ से गायत्री महामंत्र को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया जा रहा है। ऋषि व्यास की परंपरा को पुनर्जीवित करने के लिए ही हमने आर्ष साहित्य का अनूदन किया और फिर प्रज्ञापुराण भी लिखा। ऋषि परशुराम की परंपरा की पुनर्स्थापना के क्रम में दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन और सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन के कार्य यहाँ से चलाए जा रहे हैं। महर्षि भगीरथ की तरह से ही शांतिकुंज आज नवयुग की गंगोत्तरी बनकर ज्ञानगंगा को घर-घर पहुँचा रहा है।"

वे कार्यकर्त्ता अवाक् होकर परमपूज्य गुरुदेव की इन बातों को मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। परमपूज्य गुरुदेव आगे बोले—"बेटा! महर्षि चरक की आयुर्वेद की परंपरा भी यहाँ प्राण पाती आज दिखती है तो महर्षि जमदग्नि की

परंपरा का पुनर्जीवन हमने यहाँ संस्कारों की परिपाटी को पुनः चलाकर दिया है। देवर्षि नारद द्वारा चलाई गई परंपरा लोकरंजन से लोक-मंगल के कार्यों द्वारा बन पाएगी तो तुम यहाँ आर्यभट व वाराहमिहिर के ज्योतिर्विज्ञान को, आदिगुरु शंकराचार्य के सांस्कृतिक पुनरुत्थान को, कणाद के अथर्ववेदीय ज्ञान को और सूत-शौनक के लोक-शिक्षण के प्रयासों को भी मूर्तरूप पाता देख सकोगे।''

गुजरात से आए कार्यकर्त्ता ने तो मात्र यात्रा में बढ़ी दूरी की दृष्टि से वह उत्तर दिया था। उनको अनुमान भी न था कि उनके इतने छोटे से उत्तर का इतना गंभीर एवं अंतर्चक्षु खोल देने वाला उत्तर परमपूज्य गुरुदेव प्रदान करेंगे। पूज्य गुरुदेव के द्वारा दिए गए उत्तर को सुनकर वे स्वयं को सौभाग्यशाली अनुभव कर रहे थे। परमपूज्य गुरुदेव ने अंतिम निर्देश के रूप में आगे कहना आरंभ किया और बोले—''बेटा! शांतिकुंज में हमारी कार्यपद्धति मथुरा की तुलना में बहुत ज्यादा बड़ी है, इसलिए यहाँ उतार-चढ़ाव भी ज्यादा रहेंगे। हो सकता है कि हमें मानवता की रक्षा के लिए असुरता का आक्रमण भी अपने ऊपर लेना पड़े।''

उन कार्यकर्त्ता को तब यह भान भी न हुआ कि परमपूज्य गुरुदेव का इशारा बाद की घटनाओं की ओर था। वे तो मात्र शांतिकुंज की स्थापना के पीछे उपस्थित दिव्यचेतना के भाव को अनुभव करके ही स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहे थे। शांतिकुंज महाकाल का घोंसला है—उस दिन इस बात का साक्षात् अनुभव करने का अवसर उनको मिला। ❑

एक गाँव में एक धनी व्यक्ति रहता था। उसने धन-संपत्ति स्वयं अर्जित नहीं की थी, उसे सब कुछ पिता से विरासत में मिला था। वह दिन-रात बिना उद्यम किए अपने धन में वृद्धि चाहता था। एक दिन उसने इस संदर्भ में साधु—महात्मा से परामर्श करने की सोची और एक संत के यहाँ पहुँचा। उसने संत को प्रणाम करके कहा—''महात्मा जी कोई ऐसी युक्ति बताइए, जिससे मेरे धन में लगातार वृद्धि हो।'' संत ने उसे कुछ बीज देते हुए कहा—''ये बीज बड़े चमत्कारी हैं। तुम इन्हें अपने आँगन के किसी कोने में नमी वाली जगह पर बो देना। तुम्हारे धन में वृद्धि होने लगेगी।'' वह व्यक्ति बीज ले आया और उन्हें आँगन में नमी वाले स्थान पर बो दिया। कुछ दिनों बाद पौधे उग आए, बड़े होकर वृक्ष बने, उनमें फल आने लगे, पर उसकी संपत्ति नहीं बढ़ी। वह दुःखी होकर पुनः संत के पास पहुँचा और बोला—''मैंने तो बीज बो दिए, पर संपत्ति नहीं बढ़ी।'' संत ने मुस्कराकर कहा—''मैंने सोचा था तुम मेरी बात समझ जाओगे, पर तुम तो समझ नहीं पाए। तुमने बीज बोये, उनमें खाद-पानी दिया; अब वे फल दे रहे हैं, जिसका लाभ तुम्हारा पूरा परिवार ले रहा है। उद्यम करने से ही तो लाभ होता है। तुम अपने धन को भी उद्यम में लगाओ, इससे तुम्हें लाभ होगा अन्यथा जो संपत्ति है, वह भी समाप्त हो जाएगी।'' उस व्यक्ति को बात समझ में आ गई।

हँसी-खुशी से जिएँ यह जीवन

खुशी का संबंध मन की प्रसन्नता से है। अगर व्यक्ति खुश है तो उसके चेहरे पर प्रसन्नता के मनोभाव होते हैं एवं चेहरे पर हलकी मुस्कराहट होती है। खुशी के ये पल हमारी जिंदगी के महत्त्वपूर्ण व यादगार क्षण होते हैं; क्योंकि इन पलों में हम जिंदादिल व तनावमुक्त होने के साथ ही बहुत प्रसन्न भी होते हैं। इस संसार में व्यक्ति अपनी खुशी व संतुष्टि के लिए बहुत कुछ करता है, लेकिन फिर भी उसे वह खुशी नहीं मिल पाती, बल्कि इसके ठीक विपरीत तनाव व परेशानियाँ ही उसके हाथ लगते हैं।

हमारे जीवन के छोटे-छोटे पल हमें हँसी-खुशी दे देते हैं और हमें तनावमुक्त कर देते हैं। हँसने से जो खुशी मिलती है, उसके कारण व्यक्ति थोड़े समय के लिए ही सही, परंतु विचारों के दबाव से मुक्त होता है। साथ ही सभी तरह की चिंताओं व परेशानियों से मुक्त हो जाता है। इस तरह हँसी के क्षण जीवन के वे खूबसूरत पल हैं, जो हमारी जिंदगी में आने वाली चिंता व परेशानियों के तनाव को थोड़ी देर के लिए हमसे दूर कर देते हैं और हमें इतना ऊर्जावान बना देते हैं कि हम फिर अपने कार्यों से इन्हें दूर कर सकें।

हँसी-खुशी का नाम ही जीवन है। जो व्यक्ति सदैव रोते रहते हैं, हर परिस्थितियों में कमी निकालते रहते हैं, हर चीज में दोष ढूँढ़ते रहते हैं—ऐसे लोगों का जीवन व्यर्थ चला जाता है; क्योंकि दोष ढूँढ़ते रहने से, सदैव रोते रहने से वे अपने जीवन में कुछ बहुमूल्य हासिल नहीं कर पाते और यदि कुछ बहुमूल्य प्राप्त कर भी लेते हैं तो उसकी कीमत नहीं समझ पाते अथवा उसकी विशिष्टता की परख नहीं कर पाते। एक कवि का कहना है—

जिंदगी जिंदादिली का नाम है,
मुर्दादिल क्या खाक जिया करते हैं।

जिंदगी में हँसी हमारे भीतर के आनंद की बाह्य अभिव्यक्ति है। खुशी जब हम अपने अंदर नहीं समेट पाते तो उसे हम हँसी के रूप में बाहर बिखेरने लगते हैं और यह खुशी फैलकर दूसरों को भी अपनी खुशबू से महकाने लगती है यानी दूसरों को भी खुश कर देती है। हँसी-खुशी एक ऐसी संपदा है, जिसे अधिक देर तक रोका नहीं जा सकता—इसे बिखेरना ही पड़ता है और इसे बिखेरने में, बाँटने में व्यक्ति का आनंद दुगना-तिगुना और कई गुना हो जाता है; क्योंकि जितने लोगों के बीच इसे बाँटा जाता है, यह उतना ही गुना हो जाती है।

जो लोग हँसते नहीं हैं, उनके जीवन में उदासी अपना डेरा बना लेती है और जिस तरह घरों में मकड़ियाँ अपना जाल बना लेती हैं और जब उनका यह जाल बहुत घना व गहरा हो जाता है तो वह स्थान धुँधला नजर आने लगता है। मकड़ियों का यह जाल इतना कमजोर होता है कि एक ही बार उस पर झाड़ू मारने से वह टूटकर नष्ट हो जाता है। इसी तरह सदैव उदास व दु:खी रहने से मन पर भी एक ऐसा जाल बन जाता है कि हमें अपना अस्तित्व ही नजर नहीं आता। जीवन में सुखद संभावनाएँ नहीं दिखतीं। हँसी-खुशी के पल उस झाड़ू के समान होते हैं, जो मन के उदासीरूपी जाले को पलभर में नष्ट कर देते हैं और मन को साफ-सुथरा कर देते हैं।

हँसी-खुशी के पलों में व्यक्ति बैरभाव भी भूल जाता है। अपने दु:ख-कष्ट-तकलीफ भूल जाता है। इन पलों में वह सिर्फ खुशियों को ही जीता है। हमारे बुजुर्ग यह कहते आए हैं कि हँसो और पेट फुलाओ; क्योंकि हँसने से सबसे अधिक पेट का व्यायाम होता है। पेट का व्यायाम होने से वह स्वस्थ रहता है, उसके अंग-अवयव भली प्रकार कार्य करते हैं। यदि व्यक्ति का पेट स्वस्थ है तो वह भी स्वस्थ रहता है। पेट के माध्यम से ही भोजन पचता है और पोषण शरीर के सभी अंग-अवयवों में पहुँचता है।

हँसी-खुशी न केवल हमारा स्वास्थ्य संवर्द्धन करती हैं, बल्कि ये हमारी आयु भी बढ़ाती हैं; क्योंकि व्यक्ति जितना स्वस्थ होता है, उसका जीवन उतने ही लंबे समय तक चल पाता है। जिस व्यक्ति का शरीर रोगग्रस्त होता है, वह उतने ही कम समय तक उसका साथ दे पाता है। हँसी संसार की सभी कलाओं में सर्वोत्कृष्ट है; क्योंकि इससे व्यक्ति को अनगिनत लाभ होते हैं और आजकल तो हास्यकला

व्यक्ति की आमदनी का भी एक जरिया बन गई है। एक यूनानी विद्वान का कहना है कि सदा खीजने वाला हेराक्लिटस नामक विचारक बहुत कम जिया तो वहीं प्रसन्नचित्त मन वाला डेमोक्रिटस 90 वर्ष तक जिया अर्थात यह दुनिया भी उन्हीं लोगों को याद करती है, जो सदैव प्रसन्न रहने की कला जानते हैं एवं जो स्वयं हँसते हैं और हँसाते रहते हैं।

हँसी-खुशी की यह संपदा भले ही लोगों को न दिखती हो व केवल शारीरिक हाव-भाव व वाणी मात्र से इसकी अभिव्यक्ति होती हो, लेकिन फिर भी यह अमूल्य है। जिनके पास यह संपदा होती है, वे व्यक्ति बहुत खास होते हैं। कार्लाइल एक राजकुमार था। उसने संसार का त्याग कर दिया था। उसका कहना था कि जो भीतर से स्वाभाविक ढंग से हँसता है, वह व्यक्ति कभी बुरा नहीं होता। इसलिए हँसने की आदत डालो; क्योंकि जब तुम हँसोगे तो तुम्हें अच्छा लगेगा। अपने मित्रगणों को हँसाओ। वे अधिक प्रसन्न होंगे और तुमसे अधिक निकटता बनाएँगे। अपने शत्रु को हँसाओ तो वह तुमसे कम-से-कम घृणा करेगा।

वह कहता था कि एक अनजान व्यक्ति को हँसाओ तब वह तुम पर भरोसा करने लगेगा। एक उदास व्यक्ति को हँसाओ तो उसका दु:ख घट जाएगा। एक निराश व्यक्ति को हँसाओ, वह भी जीवन में आशा तलाश करने लगेगा। एक बालक को हँसाओ जिससे उसका स्वभाव व स्वास्थ्य उत्तम रहेंगे। वह आगे चलकर एक प्रसन्न इनसान बनेगा। यह भी ध्यान रखने वाली बात है कि जीवन का उद्देश्य केवल हँसी ही नहीं है।

हमें अपने इस जीवन में बहुत से जरूरी काम भी करने हैं। उन कार्यों को करने में निश्चित रूप से हम गंभीर हो जाते हैं और हमारी हँसी गायब हो जाती है। अपनी दिनचर्या में हँसी को शामिल करके हम थोड़ी देर के लिए ही सही, पर अपने जीवन की गंभीरता और जटिलता से उबर सकते हैं और फिर अपने कार्य में तल्लीन हो सकते हैं।

नदी में तैरते समय श्वास लेने के लिए सिर को पानी से ऊपर उठाना होता है और मुँह खोलकर श्वास लेना होता है। एक बार यदि श्वास ले लिया जाए तो फिर थोड़ी देर के लिए श्वास छोड़कर गहरे पानी में जाया जा सकता है, लेकिन फिर श्वास लेने के लिए पानी में ऊपर आना होता है। पानी के अंदर व्यक्ति श्वास नहीं ले सकता। वह केवल तभी ले सकता है, जब उसके साथ ऑक्सीजन सिलेंडर हो। इसी तरह गंभीरता के पलों में हँसी के पल ठीक उसी तरह होते हैं, जिसमें व्यक्ति अपने सिर को पानी की सतह से ऊपर उठाकर लंबा-गहरा श्वास ले लेता है और फिर थोड़ी देर के लिए पानी के अंदर चला जाता है।

जीवन में अपने कार्यों के प्रति गंभीरता अच्छी बात है, लेकिन सदैव यह गंभीरता बनाए रखने से व्यक्ति अपनी सहजता को खो देता है। हँसी-खुशी व्यक्ति की इस गंभीरता का हरण कर लेती हैं और उसे मन से इतना हलका कर देती हैं कि फिर गंभीरता का आनंद भी मन को भाता है। इस तरह हँसी-खुशी इत्र की शीशी से निकलने वाली उस खुशबू की तरह हैं, जो खुद तो महकती ही रहती है, पर साथ ही अपने परिवेश को भी अपनी सुगंध से सराबोर कर देती है। इसलिए सदा हँसी-खुशी का जीवन ही जीना चाहिए। ❑

**गंगा की पावन गोद और हिमालय की शीतल छाया के अतिरिक्त तीर्थों में प्राण भरने वाला एक और भी तथ्य है, समर्थ सान्निध्य, संरक्षण। प्राचीनकाल में ऋषियों के आश्रमों में रहकर न केवल आत्मविद्या का पुण्य लाभ मिलता था, अपितु उन सांसारिक समस्याओं के सरल समाधान भी मिलते थे, जिनके कारण परमात्मा का दिया कल्पवृक्ष जैसा मनुष्य जीवन निराशा, खीज, ऊब और उत्तेजना से भरा रहता है। ऐसे समाधान वह समर्थ ही कर सकते हैं, जिनमें अंतर्दर्शन की शक्ति हो। शांतिकुंज की संचालक सत्ता सिद्धों की उस परंपरा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। —*परमपूज्य गुरुदेव*

निष्काम कर्म है कर्मयोग

गरुड़ पुराण के अनुसार यमलोक में 'चित्रगुप्त' नामक देवता हरेक जीव के भले-बुरे, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि कर्मों का लेखा-जोखा हर पल, हर क्षण रखते रहते हैं और फिर उसी लेखे-जोखे व विवरण के आधार पर जीवों को शुभ कर्मों के लिए स्वर्ग और दुष्कर्मों के लिए नरक प्रदान किए जाते हैं।

गरुड़ पुराण में वर्णित इस आलंकारिक चित्रण की बहुत ही सहज, सरल व सटीक व्याख्या करते हुए युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी कहते हैं कि असंख्य प्राणियों द्वारा पल-पल किए जाने वाले कार्यों का लेखा-जोखा दिन-रात बिना विश्राम के कल्प-कल्पांतों तक करते रहना किसी चित्रगुप्त नामक एक देवता के लिए कठिन है। अस्तु यहाँ चित्रगुप्त का आशय चित्त से है, जो हर व्यक्ति में मौजूद है।

हमारा चित्त ही चित्रगुप्त है जो हर पल, हर क्षण हमारे द्वारा किए गए सभी कर्मों का साक्षी है। यह चित्तरूपी चित्रगुप्त हर प्राणी के हर कार्य को हर समय बिना विश्राम किए अंकित करते रहता है। सबका अलग-अलग चित्रगुप्त है, जितने प्राणी हैं, उतने ही चित्रगुप्त हैं। हर प्राणी का चित्त, चित्रगुप्त का कार्य कर रहा है। हम दूसरों से अपने कई कर्म छिपाए रख सकते हैं, पर अपने चित्त से नहीं, अपने मन से नहीं; क्योंकि हमारा चित्त हर पल हमारे साथ है।

हम भले या बुरे जो भी कर्म करते हैं, उनका सूक्ष्म चित्रण, अंकन स्वाभाविक रूप से हमारे चित्त में होता रहता है, हमारी अंतश्चेतना में होता रहता है। जैसे संगीतशाला में नाच-गान हो रहा है, बाजे बज रहे हैं तो विद्युतशक्ति के द्वारा उन सारी ध्वनियों का अंकन, ग्रामोफोन के रिकॉर्ड में होता रहता है और फिर बाद में हम जब कभी भी उस रिकॉर्ड को ग्रामोफोन की मशीन पर घुमाते हैं तभी उस रिकॉर्ड में संगृहीत ध्वनियाँ प्रकट हो जाती हैं, बजने लगती हैं।

जब रिकॉर्ड पर सुई का आघात लगता है, तभी उसमें भरे गाने प्रकट हो जाते हैं। उसी प्रकार हमारे चित्त में, हमारी अंतश्चेतना में अंकित हमारे सभी प्रकार के कर्मों की रेखाएँ, कर्मों के संस्कार किसी उपयुक्त अवसर, समय, काल आदि का आघात लगते ही प्रकट हो जाते हैं और फिर उन कर्मों का प्रभाव, असर, अच्छे-बुरे परिणाम के रूप में, फल के रूप में, सुखद व दुःखद स्थिति-परिस्थिति के रूप में हमारे जीवन में दृष्टिगोचर होने लगता है। यह कुछ वैसा ही है, जैसे किसी किसान के द्वारा बोया गया बीज आज उसके खेत में गेहूँ, मटर, चना, मक्का आदि फसल के रूप में तैयार खड़ा है। उसके खेत में आज वही फसल तैयार है, जिसके बीज उसने पूर्व में बोये थे।

कुछ बीज तो शीघ्र ही फसल बनकर तैयार हो जाते हैं, पर कुछ पौधों के बीज कुछ अधिक समय लेकर बीज से वृक्ष के रूप में तैयार हो पाते हैं। जैसे आम की गुठली भूमि में डाली गई। कुछ समय बाद उस गुठली से एक अंकुरण घटित हुआ और वर्षों बाद वह आम के वृक्ष के रूप में तैयार हो जाता है। वह वृक्ष फल देने की स्थिति में आ जाता है। उसी प्रकार हमारे कुछ कर्मों के फल हमें तुरंत प्राप्त हो जाते हैं, पर कुछ कर्मों के फल वर्षों बाद प्राप्त होते हैं। जिन कर्मों का पूरा फल हम वर्तमान जीवन में नहीं भोग पाते तो उसके पूर्ण भोग के लिए हमारी आत्मा एक नवीन शरीर धारण कर लेती है, जिसे हम पुनर्जन्म कहते हैं।

आत्मा तब तक नूतन शरीर धारण करती रहती है, जब तक चित्त में, आत्मा में अंकित हमारे कर्म-संस्कार पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाते, मिट नहीं जाते। जब चित्त कर्म-संस्कार से पूर्णतः मुक्त हो जाता है, तभी उस जीवात्मा को मोक्ष या मुक्ति की प्राप्ति होती है। वह सभी प्रकार के कर्मबंधनों से मुक्त हो, जीवन-मरण के बंधन से भी मुक्त हो जाती है। अस्तु कर्मों का फल मिलना तो अवश्यंभावी है। अक्सर हम अपने द्वारा किए गए अच्छे कर्मों के फल पाने की आस लगाए होते हैं, पर अपने द्वारा किए गए बुरे कर्मों के फल से, परिणाम से बचना चाहते हैं। ऐसा कतई संभव नहीं है। कर्मफल का सिद्धांत अकाट्य है, अटल है। 'कर्म रेख मिटे नहीं, चाहे लाख करो चतुराई।' तो फिर हम ऐसा क्या करें, जिससे हम दुःखों से बच सकें, बुरे कर्मों के परिणाम से बच सकें ?

इसका एक ही मार्ग है, जो गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने दिखाया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

अर्थात तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फल में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

प्रस्तुत श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण बड़े शानदार तरीके से हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। उनका कहना है कि हमारा अधिकार कर्म करने मात्र पर है, उसके फल पर नहीं। हम कोई कर्म करके उसका फल पाने से, परिणाम पाने से बच जाएँ, ऐसा कतई संभव नहीं। अस्तु हमारे लिए महत्त्वपूर्ण यह है कि हम हमेशा शुभ कर्म, पुण्यकर्म करें, जिससे हमें शुभ फल, सुखद फल की प्राप्ति होगी और हम बुरे कर्म, पापकर्म नहीं करें, जिससे हम बुरे फल व दुःखद परिणाम से बच सकेंगे।

सर्वप्रथम सत्कर्म, शुभ कर्म, पुण्यकर्म करना आवश्यक है। जिन कर्मों से अपना व दूसरों का भला हो, हित हो, वही शुभ कर्म हैं, पुण्यकर्म हैं और जिन कर्मों से स्वयं के साथ-साथ दूसरों का अहित होता है, बुरा होता है, दूसरों को दुःख व पीड़ा होती है, वे सभी कर्म ही पापकर्म हैं, बुरे कर्म हैं। जिन कर्मों को करते हुए हमें आत्मग्लानि होती है, वे कर्म पापकर्म ही हैं, बुरे कर्म ही हैं। जैसे—चोरी, बेईमानी, हत्या, लूट, हिंसा, अपराध, दूसरों को सताना, परेशान करना, नुकसान पहुँचाना आदि। उसी प्रकार जिन कर्मों को करते हुए हमें आत्मसंतोष मिलता हो, आत्मगौरव होता हो, हमारी आत्मा तृप्त व आनंदित अनुभव करती हो, वे सभी कर्म शुभ कर्म हैं, सत्कर्म हैं, पुण्यकर्म हैं। जैसे—दान, परोपकार, ईश्वर-उपासना, गुरु-सेवा, जन-सेवा, ईमानदारी, कर्त्तव्यपरायणता आदि।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कई बार हम बुरे कर्म नहीं करना चाहते हैं, फिर भी हम कर लेते हैं। फिर बुरे कर्म करने से कैसे बचें? दरअसल हमारे चित्त में जन्म-जन्मांतरों के जो संस्कार मौजूद हैं, उनके प्रभाव में आकर ही हम कोई कर्म करने को प्रेरित होते हैं। यह कुछ वैसा ही है, जैसे यदि जल का प्रवाह बहुत तीव्र हो, नदी का प्रवाह बहुत तीव्र हो तो व्यक्ति उस प्रबल प्रवाह में ही बहता चला जाता है। वह रुकना चाहता भी है तो भी नदी का तेज प्रवाह उसे रुकने नहीं देता है। उसे उसी दिशा में बहाता जाता है और वह बहता जाता है।

यदि हमारे चित्त में बुरे कर्मों के संस्कार बहुत प्रबल हैं तो उस प्रबल प्रवाह में न चाहते हुए भी व्यक्ति बहता जाता है और वह इच्छा या अनिच्छापूर्वक बुरे कर्मों में लिप्त रहता है। उसी प्रकार यदि शुभ या पुण्यकर्मों का संस्कार प्रबल है तो फिर व्यक्ति उस प्रबल प्रवाह में बहकर शुभ कर्म, पुण्यकर्म करने के लिए प्रेरित होता है। बुरे कर्मों में उसकी रुचि ही नहीं होती; क्योंकि चित्त के संस्कारों का प्रवाह ही पुण्यमय है, धर्ममय है, जिसके कारण वह स्वभावतः उसी दिशा में बहता जाता है। महाभारत में दुर्योधन कई प्रकार के बुरे कर्मों में लिप्त था। वह भलीभाँति जानता था कि कर्म क्या है? अधर्म क्या है? पुण्य क्या है? पाप क्या है? पर उसके साथ समस्या यही रही कि वह अपने चित्त के बुरे संस्कारों के प्रबल वेग में बहता रहा और तदनुरूप वैसे ही बुरे कर्म करता रहा।

धर्म में, पुण्यकर्म में उसकी रुचि नहीं थी और अधर्म व पापकर्म से उसे अरुचि नहीं हो सकी, उससे निवृत्ति नहीं हो सकी तो शुभ संस्कारों के प्रवाह में बहते रहना तो अच्छा है, इसका परिणाम सुखद है, पर बुरे कर्म संस्कारों के प्रवाह में बहते रहना दुःखद परिणाम देने वाला है। प्रश्न उठता है कि क्या बुरे कर्म संस्कारों के प्रवाह से बचने का कोई मार्ग नहीं है? कोई उपाय नहीं है? अवश्य ही उपाय है, जिसे अपनाकर हम उस प्रवाह से बाहर निकल सकते हैं। अरुचि होते हुए भी हमें शुभ कर्म, पुण्यकर्म करने का अभ्यास करते रहना चाहिए। रोगी को कड़वी दवा रुचिकर तो नहीं ही लगती है, पर रोगमुक्त होने के लिए अरुचिपूर्वक उस कड़वी दवा को भी उसे लेना पड़ता है।

रोगी को स्वादिष्ट भोजन भी अरुचिकर लगता है, पर रोगमुक्त होते ही वही भोजन उसे स्वादिष्ट लगने लगता है। उसी प्रकार स्वभावतः अरुचि होते हुए भी यदि हम दान, परोपकार, दूसरों की सेवा, भलाई, ध्यान, ईश्वर-उपासना, गुरुसेवा, कर्त्तव्यपालन आदि करते रहें तो धीरे-धीरे हमारे चित्त के बुरे संस्कार धुलने लगेंगे, मिटने लगेंगे और फिर धीरे-धीरे उन शुभ कर्मों में हम स्वभावतः रुचि लेने लगेंगे।

यहाँ शुभ कर्मों में रुचि लेना ही पर्याप्त नहीं है। शुभ कर्म, पुण्यकर्म करते हुए भी हमें अब यह सावधानी रखनी

होती है कि हम फल की चिंता किए बगैर ही शुभ कर्म, पुण्यकर्म करते रहे हैं। हममें कर्त्तापन का भाव नहीं आना चाहिए। इससे हम अपनी सारी ऊर्जा उस पुण्यकर्म, शुभ कर्म, कर्त्तव्य कर्म में निरत कर सकेंगे।

हमारी ऊर्जा हमारे पुण्यकर्मों से मिलने वाले मधुर फल की आशा व चिंता में समाप्त होने से बच जाएगी। फलतः हमें हर कर्म में सफलता तो मिलेगी, पर साथ ही हम पुण्यकर्मों के फल के प्रति होने वाली आसक्ति से बचे रहेंगे; क्योंकि पुण्यकर्मों के फल के प्रति होने वाली आसक्ति भी एक प्रकार का बंधन ही है, जो हमारी मुक्ति, मोक्ष व परम आनंद में बाधक है।

अस्तु हमें बुरे कर्म करने से बचे रहने के साथ-साथ, अच्छे कर्मों से मिलने वाले फल के प्रति होने वाली आसक्ति से भी बचना है; क्योंकि बंधन तो आखिर बंधन ही है। हम लोहे की जंजीर से बँधे हैं, यह भी बंधन है और दुःखदायी है और यदि हम सोने की जंजीर से बँधे हैं तब भी यह बंधन ही है; क्योंकि यह भी पूर्ण आनंद, परम आनंद, मोक्ष, मुक्ति आदि में बाधक और दुःखदायी है।

पुण्यकर्मों, शुभ कर्मों से मिलने वाले फल की चिंता व उसके प्रति आसक्ति ही सोने की जंजीर है। हमें इस जंजीर को भी निष्काम कर्म के द्वारा तोड़ना है; जिससे हम पूर्ण आनंद, परम आनंद, ब्रह्मानंद की प्राप्ति कर सकें। सुख-दुःख, जय-पराजय, लाभ-हानि, मान-अपमान आदि द्वंद्वों से परे हो सकें, उनके पार जा सकें और हर-पल आनंदित रह सकें। जीवन है तो हमें लाभ-हानि, जय-पराजय, मान-अपमान, सुख-दुःख आदि द्वंद्वों का सामना तो करना ही होगा। इसलिए हमें कोई भी कर्म निष्काम भाव से करना चाहिए; तब हम कर्म के परिणाम से सदा सर्वदा अप्रभावित रहेंगे। जय-पराजय, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि दोनों स्थितियों में समभाव की स्थिति में रहेंगे।

कर्म का परिणाम चाहे जो भी हो, हम हर स्थिति में समत्व व आनंद की स्थिति में रह सकेंगे। अस्तु हम जो भी कर्म करें उसे यह मानकर ही करें कि यह कर्म मैं ईश्वर के लिए ही कर रहा हूँ, मैं इसे ईश्वर के चरणों में समर्पित कर रहा हूँ। हमारे लिए हमारा हर कर्म ही ईश्वर की पूजा है और वास्तव में यही निष्काम कर्म है और निष्काम कर्म ही कर्मयोग है अर्थात अपने कर्म के द्वारा ईश्वर के साथ एकरूप होना है, एकाकार होना है। जीवात्मा का परमात्मा से विलय होना है। बिंदु का सिंधु में विलय होना है, विसर्जन होना है। ❑

सामर्थ्य बढ़ने के साथ ही मनुष्य के दायित्व भी बढ़ते हैं। ज्ञानी पुरुष बढ़ती सामर्थ्य का उपयोग पीड़ितों के कष्ट हरने एवं भटकी मानवता को दिशा दिखाने में करते हैं और अज्ञानी, उसी सामर्थ्य का उपयोग अहंकार के पोषण और दूसरों का अपमान करने के लिए करते हैं। जय और विजय भगवान विष्णु के द्वारपाल थे। उन्हें अपने पद का अभिमान हो गया। एक दिन उसी अहंकार के कारण उन्होंने सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार जैसे ऋषियों का अपमान कर दिया। परिणामस्वरूप उन्हें असुर होने का शाप मिला और तीन कल्पों में हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु, रावण-कुंभकरण एवं शिशुपाल-दुर्योधन के रूप में जन्म लेना पड़ा। पद जितना बड़ा होता है, सामर्थ्य उतनी ही ज्यादा और दायित्व उतने ही गंभीर। ऐसा ही अपमान किसी साधारण द्वारपाल ने किया होता तो इतने परिमाण में दंड न चुकाना पड़ता। सामर्थ्य का न्यायसंगत निर्वहन ही श्रेष्ठ मार्ग है।

पर्यावरण संकट के भयावह दुष्परिणाम

आज पर्यावरण संकट अपने गंभीरतम दौर से गुजर रहा है, जिसका परिणाम अब सभी को दिखने लगा है। विश्व स्तर पर पर्यावरण में हो रहे बदलावों व चुनौतियों पर संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न पर्यावरण कार्यक्रमों द्वारा जीईओ की रिपोर्ट समय-समय पर जारी की जाती है। ऐसी ही एक रिपोर्ट में यह कहा गया है कि धरती पर इस समय होने वाले ऐसे बदलावों के सबसे खतरनाक स्तर से बचना बहुत जरूरी है; क्योंकि फिर इस सीमा के बाद धरती पर विविधतापूर्ण जीवन को पनपाने वाली स्थितियाँ सदा के लिए बदल सकती हैं।

इस समय विश्व के अनेक शीर्ष स्तर के वैज्ञानिक बार-बार यह चेतावनी दे रहे हैं कि विश्व स्तर पर पर्यावरण का संकट अपने सबसे गंभीर दौर में पहुँच चुका है। इस गंभीर दौर की पहचान करने के लिए स्टॉकहोम रेसीलियंस सेंटर ने 9 संदर्भों में धरती की सीमा रेखाओं को पहचानने का प्रयास किया है; क्योंकि यदि इन सीमा रेखाओं का अतिक्रमण हुआ तो धरती पर जीवन की संभावनाओं पर बहुत प्रतिकूल असर पड़ेगा।

ये नौ संदर्भ हैं—(1) ताजे या मीठे पानी का उपयोग व दोहन, (2) इस्ट्रेटोस्फीयर की ओजोन परत, (3) भूमि उपयोग में बदलाव, (4) जलवायु बदलाव, (5) जैव विविधता, (6) समुद्रों का अम्लीकरण, (7) नाइट्रोजन व फॉस्फोरस में वृद्धि, (8) वायु प्रदूषण और (9) रासायनिक प्रदूषण—इन नौ संदर्भों में निर्धारित सीमा रेखाओं का अतिक्रमण धरती पर जीवन के अस्तित्व के लिए घातक होगा। हालाँकि इन सभी सीमा रेखाओं को निर्धारित करने में कठिनाइयाँ हैं, परंतु जहाँ तक संभव था, यह काम इस केंद्र के वैज्ञानिकों ने किया है। इनमें से तीन संदर्भों में सीमा रेखा का उल्लंघन संभवत: पहले ही हो चुका है। ये तीन संदर्भ हैं—(1) जलवायु बदलाव, (2) जैव विविधता और (3) बायोस्फीयर में नाइट्रोजन की वृद्धि।

पर्यावरण संकट पर हुए इस अध्ययन में यह बताया गया है कि ये सभी सीमा रेखाएँ एकदूसरे से जुड़ी हुई हैं और यही कारण है कि पर्यावरण में गंभीर संकट उत्पन्न करने वाले इन नौ संदर्भों की सीमा रेखाओं में से किसी एक में भी यदि समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं तो वह दूसरे संदर्भ की सीमा रेखाओं को भी अवश्य प्रभावित करेंगी। इस प्रकार हमारे वास्तविक जीवन में इन सबका मिला-जुला असर बहुत खतरनाक परिणामों के रूप में सामने आ सकता है; क्योंकि अभी तक इन समस्याओं को नियंत्रित करने की उचित व्यवस्था विश्व स्तर पर मौजूद नहीं है। अत: इस पर ध्यान देने की बहुत जरूरत है।

एक चर्चित अध्ययन गेरार्डो केबोलोस, पॉल आर. एहरलिच व उसके साथी वैज्ञानिकों ने किया है, जिसमें यह बताया गया है कि 100 वर्षों में 10000 प्रजातियों में से 2 स्तनधारी लुप्त हो जाएँ तो यह सामान्य स्थिति मानी जाती है, लेकिन इस सामान्य गति की तुलना में पिछली शताब्दी में रीढ़ की हड्डी वाले जीवों के लुप्त होने की दर 100 गुना अधिक पाई गई है। इस आधार पर इस अध्ययन ने कहा कि धरती विभिन्न प्रजातियों के बड़े पैमाने पर लुप्त होने के नए दौर में प्रवेश कर चुकी है। देखा जाए तो मनुष्य के धरती पर आगमन के बाद प्रजातियों के लुप्त होने का यह सबसे बड़ा दौर है। यह प्रजातियों के लुप्त होने का पहला ऐसा दौर है, जो प्रकृतिजनित कारणों से नहीं अपितु मानवजनित कारणों से उत्पन्न हुआ है।

पहली बार धरती पर दो पैरों पर चलने वाले जीव लगभग 3 लाख वर्ष पहले उत्पन्न हुए थे, पर जहाँ तक मनुष्य के वर्तमान रूप यानी होमो सेपियन्स की बात है तो धरती के विभिन्न भागों में उसका प्रसार लगभग 50000 वर्ष पहले हुआ। कुछ वर्ष पहले विश्व के 1575 वैज्ञानिकों ने एक बयान जारी किया, जिसमें उन्होंने यह कहा कि हम मानवता को इस बारे में चेतावनी देना चाहते हैं कि भविष्य में क्या हो सकता है।

उन्होंने कहा कि पृथ्वी और उसके जीवन की व्यवस्था जिस तरह से हो रही है, उसमें एक व्यापक बदलाव की जरूरत है अन्यथा बहुत दु:ख-दरद बढ़ेंगे, जिसके कारण पृथ्वी इतनी तहस-नहस हो जाएगी कि उसे बचाया नहीं जा

सकेगा। इन वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि वायुमंडल, समुद्र, मिट्टी, वन और जीवन के विभिन्न रूपों पर लगातार बिगड़ते पर्यावरण का बहुत दबाव पड़ रहा है और यदि यही स्थिति बनी रही तो सन् 2100 तक पृथ्वी के विभिन्न जीव रूपों में से एक-तिहाई लुप्त हो सकते हैं। गौर करने वाली बात यह है कि मनुष्य की वर्तमान जीवनपद्धति के अनेक तौर-तरीके उसके भविष्य में सुरक्षित जीवन की अनेक संभावनाओं को नष्ट कर रहे हैं और उसे लगातार इतना बदल रहे हैं कि जिस रूप में जीवन को हमने जाना है, उसका अस्तित्व ही कहीं भविष्य में नामुमकिन न हो जाए।

मानवनिर्मित प्रकृति की इस तबाही को रोकने के लिए आज की जीवनशैली में बुनियादी बदलाव जरूरी हैं और इन बुनियादी बदलावों में सबसे प्रमुख हैं—धरती की हरियाली को समृद्ध करना, प्रदूषण बढ़ाने वाले तत्त्वों की रोक-थाम करना, प्रदूषित हो चुके जल, वायु व मिट्टी को प्रदूषणमुक्त करना, प्रकृति से मानव जीवन की निकटता को बढ़ाना आदि। यदि इन सब स्तरों पर गहराई से ध्यान दिया जा सके तो पर्यावरण पर गहराने वाले संकट के बादल छँट सकते हैं और इसके कारण धरती पर प्रजातियों के लुप्त होने की दर को भी हम कम कर सकते हैं। ❑

एक बार भगवान श्रीकृष्ण कर्ण की दानवीरता की मुक्त कंठ से प्रशंसा कर रहे थे। अर्जुन इसे सहन नहीं कर पा रहे थे। भगवान कृष्ण ने अर्जुन के मनोभाव जान लिए और अर्जुन को कर्ण की दानशीलता का ज्ञान कराने का निश्चय किया। एक दिन एक ब्राह्मण ने अर्जुन से कहा—"धनंजय! मेरी पत्नी मर गई, उसने मरते समय कहा था कि मेरा दाह संस्कार चंदन की लकड़ियों से ही करना, इसलिए क्या आप मुझे चंदन की लकड़ियाँ दे सकते हैं?" अर्जुन ने कहा—"क्यों नहीं?" उन्होंने कोषाध्यक्ष को तुरंत पच्चीस मन चंदन की लकड़ी लाने की आज्ञा दी, परंतु उस दिन न भंडार में और न बाजार में ही चंदन की लकड़ी थी। कोषाध्यक्ष ने आकर असमर्थता व्यक्त की।

अर्जुन ने भी ब्राह्मण को अपनी लाचारी बता दी। ब्राह्मण अब कर्ण के यहाँ पहुँचा। यहाँ भी वही स्थिति थी, परंतु कर्ण ने तुरंत अपने महल से चंदन के खंभे निकालकर ब्राह्मण को दे दिए। उसका महल ढह गया। ब्राह्मण ने पत्नी का दाह संस्कार किया। शाम को श्रीकृष्ण व अर्जुन टहलने के लिए निकले। देखा तो वही ब्राह्मण श्मशान पर कीर्तन कर रहा है। पूछने पर उसने बताया कि कर्ण ने अपने महल के खंभे निकालकर मेरा संकट दूर कर दिया, भगवान उसका भला करें। अब श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले—"चंदन के खंभे तो तुम्हारे महल में भी थे, पर तुम्हें उनकी याद ही नहीं आई।" यह सुनकर अर्जुन लज्जित हो गए।

सत्संग से मिलते हैं सुख-शांति के सूत्र

महात्मा गौतम बुद्ध अक्सर अपने शिष्यों, अनुयायियों व आम लोगों के बीच उपदेश दिया करते थे। अपने उपदेशों में वे अक्सर लोगों को सच्चाई के मार्ग पर चलने की सीख देते थे। उन्हें यह बताते थे कि सुख और शांति से भरा-पूरा जीवन कैसे जिया जाए। अपने उपदेशों में वे इन बिंदुओं पर अवश्य ही प्रकाश डालते थे। उनके इन उपदेशों का लोगों के जीवन पर बड़ा गहरा असर होता था और उनके बताए मार्ग पर चलने वाले लोगों का कल्याण भी होता था। उन्हें जीवन में सुख और शांति मिलती थी। इसलिए वे जहाँ भी उपदेश देते, वहाँ लोगों की काफी भीड़ इकट्ठी हो जाया करती थी। लोग उन्हें बड़े ध्यान से सुनते थे।

एक दिन भ्रमण करते हुए वे एक गाँव में पहुँचे और वे वहाँ सुबह और शाम को सत्संग करने लगे। वहाँ भी लोगों की भीड़ उमड़ने लगी। उसी गाँव से एक युवक प्रतिदिन भगवान बुद्ध का प्रवचन सुनने आने लगा। एक दिन उस गाँव में भगवान बुद्ध के प्रवचन का आखिरी दिन था। वे वहाँ से कहीं अन्यत्र जाने की तैयारी कर रहे थे कि तभी युवक उनके पास आया और बोला—"महाराज! क्या आपके सत्संग में शामिल होने वाले सभी लोगों का कल्याण होता है?"

भगवान बुद्ध ने कहा—"कुछ का होता है और कुछ का नहीं होता है।" इस पर उस युवक ने फिर प्रश्न किया—"महाराज! आपके उपदेशों को सुनकर सभी लोगों का कल्याण क्यों नहीं होता? सभी लोगों को सुख-शांति क्यों नहीं मिलती? मैंने भी तो कई बार, कई स्थानों पर जाकर आपके उपदेशों को सुना है। फिर मेरे जीवन में सुख-शांति क्यों नहीं आई? मेरा कल्याण अब तक क्यों नहीं हुआ?"

भगवान बुद्ध ने उसके द्वारा किए गए सवालों के जवाब में एक सवाल पूछा—"अगर कोई व्यक्ति तुमसे राजमहल जाने का रास्ता पूछे और तुम्हारे रास्ता बताने के बाद भी वह राजमहल नहीं पहुँच पाए, तो तुम क्या करोगे?" तब उस युवक ने कहा—"प्रभु! मेरा काम तो सिर्फ रास्ता बताने का है, अगर फिर भी वह रास्ता भटक जाता है तो मैं क्या कर सकता हूँ?" भगवान बुद्ध ने कहा—"वत्स! ठीक इसी प्रकार मेरा काम लोगों को सही राह दिखाना है, परंतु उस राह पर चलने का काम तो लोगों को ही करना है। मैं उचित-अनुचित, अच्छे-बुरे का भेद बता सकता हूँ, पर उन्हें करने की जिम्मेदारी तो लोगों की ही हैं।"

भगवान बुद्ध बोले—"अपने उपदेशों में मैं जो भी सूत्र बताता हूँ, उन्हें जीवन में उतारना है या नहीं उतारना है, यह निर्णय तो लोगों को ही करना होता है। यदि सत्संग में मिले सूत्रों को जीवन में उतारा नहीं जाए तो फिर उससे लाभ कैसे प्राप्त हो सकता है? पर हाँ जो लोग उपदेश में, सत्संग में मिले ज्ञान को, सूत्रों को अपने जीवन में शामिल कर लेते हैं, उन सूत्रों का पालन करने लगते हैं, उनका कल्याण अवश्य ही होता है। उनके जीवन में सुख-शांति अवश्य ही आती है, पर जो लोग उन सूत्रों को अपने जीवन में नहीं अपनाते, नहीं उतारते वे हमेशा दु:खी रहते हैं।"

इस पर उस युवक ने कहा—"प्रभु! आपके उपदेश सुनने के बाद मैं उन्हें अपने गृहस्थ जीवन में पालन करने का प्रयास तो करता हूँ, पर मैं वैसा सदाचरण नहीं कर पाता हूँ, जैसा आपके सत्संग में सुनकर जाता हूँ। मैं उसे पालन करने का प्रयास तो करता हूँ, पर कर नहीं पाता। फिर इसमें मेरा क्या दोष? फिर बताइए मैं क्या करूँ?"

भगवान बुद्ध मुस्कराते हुए बोले—"वत्स! यदि प्रयास सच्चा हो और सही दिशा में हो तो उसमें सफलता अवश्य मिलती है। आधे-अधूरे मन से किए गए प्रयास निष्फल ही होते हैं।" भगवान बुद्ध ने उस युवक को बाँस की एक टोकरी देते हुए उसमें पास की नदी से पानी भर लाने को कहा। युवक नदी में जाकर उस टोकरी में जल भरता, पर उसे बाहर निकालते ही पूरा जल टोकरी से बाहर निकल आता। भगवान बुद्ध ने कहा—"भले ही उसमें जल नहीं रहा हो, पर तुम अपना प्रयास जारी रखो।" उस युवक ने वैसा ही किया। युवक प्रतिदिन टोकरी में जल भरने का प्रयास करता, पर हर बार असफल ही रहता।

कुछ दिनों बाद भगवान बुद्ध ने उससे पूछा—"इतने दिनों से टोकरी में लगातार जल डालने से क्या टोकरी में

कोई फरक नजर नहीं आया?'' तब उस युवक ने कहा—''प्रभु! एक फरक जरूर नजर आया है। पहले टोकरी के साथ मिट्टी जमा होती थी, अब वह साफ दिखाई देती है। कोई गंदगी नहीं दिखाई देती है और इस टोकरी के छेद पहले जैसे बड़े नहीं रह गए हैं। वे छेद बहुत छोटे हो गए हैं।''

भगवान बुद्ध ने उसे समझाया—''यदि इसी तरह उस बाँस की टोकरी को पानी में निरंतर डालते रहोगे तो कुछ दिनों में ये छेद फूलकर बंद हो जाएँगे और टोकरी में पानी भर पाओगे।'' उस युवक ने वैसा ही किया और पाया कि अब उस टोकरी के छिद्र फूलकर पूरी तरह बंद हो गए हैं और उस टोकरी में जल भी भर आया है। उस जल भरी टोकरी को बुद्ध को दिखाते हुए उस युवक ने कहा—''प्रभु! आपने सच ही कहा था, देखिए आज सचमुच ही इस टोकरी में पूरा जल भर आया है।''

भगवान बुद्ध बोले—''वत्स! इसी प्रकार जो निरंतर सत्संग करते हैं और सत्संग में मिले ज्ञान के सूत्रों को अपने जीवन में उतारने का सच्चा प्रयास करते हैं, लगातार प्रयास करते हैं—वे एक दिन उसमें अवश्य ही सफल होते हैं। वे अपने जीवन में उसे उतार पाते हैं और सुखी होते हैं। लगातार सत्संग में शामिल होने से व्यक्ति का मन निर्मल होने लगता है। इस टोकरी के छिद्रों की तरह उसके अवगुणों के छिद्र भरने लगते हैं और उसमें गुणों का जल भरने लगता है। जिससे उसका जीवन सुख और शांति से भर जाता है। ❑

प्राचीनकाल में देव-ब्राह्मण निंदक एक प्रसिद्ध जुआरी था। वह महापापी तथा व्यभिचार आदि अन्य दुर्गुणों से दूषित था। एक दिन कपटपूर्वक जुए से उसने बहुत सारा धन जीता। उस धन से वह पान, गंध, माला आदि लेकर वेश्या को देने दौड़ा, रास्ते में लड़खड़ाकर गिर गया और मूर्च्छित हो गया, जब होश आया, तब उसे अपने किए पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने वह सारी सामग्री वहीं पर स्थित एक शिवलिंग को समर्पित कर दी। कालांतर में उसकी मृत्यु हुई।

यमलोक में यमराज बोले—''तू अपने पापों के कारण बड़े-बड़े नरकों में यातना भोगने योग्य है। तूने अपने पूरे जीवन में केवल एक पुण्यकार्य किया है, जो भगवान शिव को गंध अर्पित की है, इसके फलस्वरूप तुझे तीन घड़ी तक स्वर्ग का शासन और इंद्र का सिंहासन प्राप्त होगा।'' जुआरी ने कहा—''तब पहले मुझे पुण्य का ही फल प्राप्त कराया जाए।'' अब यमराज की आज्ञा से वह तीन घड़ी के लिए स्वर्ग का राजा बना दिया गया। इन तीन घड़ियों में उसने स्वर्ग के सारे कीमती पदार्थों का दान कर दिया। तीन घड़ी बीत जाने पर स्वर्ग से चला गया। इस दान के पुण्य के फलस्वरूप जुआरी नरक-यातना भोगे बिना ही अगले जन्म में महादानी विरोचन-पुत्र बलि बना। ऐसी है दान की महिमा।

जनतंत्र में अर्थतंत्र की विडंबना

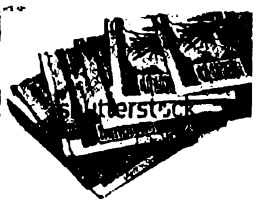

अभी कुछ महीनों पहले देश में उपचुनाव संपन्न हुए। हम सभी ने देखा कि वसंत में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव के मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं। झंडों, चुनाव चिह्नों, भोंपुओं, सभाओं, जुलूसों और जनसंपर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़कर बहने लगती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरंभ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई वादों के दौर चलवाता है। आखिर जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्यों है? कहना कठिन है कि यह जनतंत्र का स्वरूप है या अर्थतंत्र का।

सब चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तंत्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की—यह दीवार दिनोदिन ऊँची होती जा रही है। चुनाव के दंगल में समाजसेवा, जनसेवा और राष्ट्रसेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं, जो खरच करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति करने आए हैं।

इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन-आसमान का अंतर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति के स्तर का गिरते जाना तथा उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं, वरन संपत्ति व साधनों की शक्ति वाले हेय और क्षुद्र किस्म के लोगों का अखाड़ा बन जाना स्वाभाविक ही है।

यह स्थिति लोकतंत्र के लिए बहुत घातक है। आज चुनाव के मैदान में उतरने वाले अधिकांश प्रत्याशियों के दिल-दिमाग में जनसेवा, देशसेवा, सुशासन और दल के सिद्धांत और शक्ति की बात तो गौण रहती है और मुख्य होती है अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा। उसी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वे लाखों रुपये फूँकते हैं, चुनाव में अपने साधनों का प्रयोग करते हैं। लोकसेवा का उद्देश्य लेकर और जनता को सुशासन देने के दायित्व के निर्वाह की भावना से कौन इतना प्रचार कर सकता है? वहाँ तो मन-मस्तिष्क में पाँच वर्ष तक रोब-दाब, स्वार्थशाही, ठाठ-बाट, शानोशौकत, अच्छे-खासे वेतन के साथ मुफ्त में हजारों रुपये का आवास, संचार, चिकित्सा आदि की सुविधाएँ और फूलमाला तथा जय-जयकारों के सपने भी भरे होते हैं। जब उन्हें साकार करने का नंबर आता है तो पहले ये ही सब आते हैं, जनसेवा को तो सबसे अंत में स्थान दिया जाता है।

इनका प्रबल आकर्षण ही वर्गों, धर्मों, जातियों, संप्रदायों, दलबंदियों, ट्रेड यूनियनों में बँटे हुए मतदाताओं को बहकाकर, उनकी निरक्षरता और अंधविश्वास से लाभ उठाकर धन, भोज, शराब आदि के जाल फैलाकर येन-केन प्रकारेण सत्ता हथियाने की जोड़-तोड़ बैठाने जैसे हेय हथकंडे अपनाने का कारण है। सच्चे समाजसेवियों की वेदना विलुप्त है।

भारत का आम आदमी गरीब है, उसकी आर्थिक स्थिति उसे इस बात की इजाजत नहीं देती कि वह राजनीति के क्षेत्र में उतरे। कोई व्यक्ति सेवाभावना से, निष्ठा और ईमानदारी से इस क्षेत्र में आना चाहता है तो वह इन्हीं के बल पर चुनाव जीत सके, ऐसा बहुत ही कम संभव है। ऐसे लोग प्रायः निराश ही रहते हैं। वे यही सोचकर दुःखी हुआ करते हैं कि गांधी-सुभाष के सपनों का भारत कैसे बनेगा?

इस स्थिति में वे राजनीति की इस दौड़ में सफल नहीं हो सकते, इसलिए उनकी जनसेवा और राष्ट्रसेवा की भावनाओं के अंकुर उगते ही मुरझाने लगते हैं, जबकि ऐसा होना नहीं चाहिए। यह दुःखद है कि चुनाव में खड़े होने वाले अधिकांश प्रत्याशियों के मन-मस्तिष्क में जनता, देश और समाज की चिंता नहीं है। वे तो 'कोउ नृप होउ, हमहि का हानी। चेरि

छाड़ि अब होब कि रानी॥' की मंथराबुद्धि से पीड़ित हो रहे हैं। कौन व्यक्ति आ जाए कि उससे मेरा लाभ हो या हमारे क्षेत्र का विकास हो जाए। अच्छे पढ़े-लिखे और समझदार समझे जाने वाले व्यक्तियों के मुँह से भी ऐसी ही बातें सुनने को मिल जाती हैं—'भाई अमुक मंत्री कितना ही भ्रष्ट और स्वार्थी रहा हो, उसने हमारे यहाँ सड़कें तो बनवा दीं।' 'घर तो भर लिया, पर अपने नगर को चमन करा दिया।' वे बस, इसी तरह की छोटी दृष्टि से चुनाव में खड़े होने वाले प्रत्याशियों को तौलते हैं। यह ही कारण है कि अच्छे और सच्चे लोकसेवियों को मोर्चा सँभालने की जरूरत है।

जो लोग अपनी सेवाभावना, समाजनिष्ठा और राष्ट्रीयता की भावना के बल पर ही राजनीति में जमना चाहते थे, उन्हें पैसे, प्रभाव और छल-छद्म के बल पर चुनाव में सफल होने वाले घटिया स्तर के लोगों ने वहाँ जमने नहीं दिया तो उन्हें यह नहीं समझना चाहिए कि उनका अब कोई कर्मक्षेत्र ही नहीं रहा। गांधी और सुभाष के सपनों का भारत बसता देखने वाले विवेकशील लोगों को भी उदासीन और निराश होने की आवश्यकता नहीं है। यह सोच कि सब काम सरकार द्वारा होंगे और इसलिए लोकसेवकों को, जननायकों को, देशभक्तों और राष्ट्र के प्रति, लोकतंत्र के प्रति राजनीति की वही नीति अपनानी पड़ेगी।

आजादी आ गई, किंतु अभी आजादी की लड़ाई समाप्त नहीं हुई है। तंत्र तो भारतवासियों के हाथ में आ गया, पर उस तंत्र को सँभालने की समझ और शक्ति 'जन' में नहीं आई है। अभी तो स्थिति यह है कि लगभग एक-तिहाई व्यक्ति तो वोट देने जाना ही व्यर्थ समझते हैं। अशिक्षा और रूढ़िवादिता में जकड़ी जनता आजादी को अपने घर का उजाला कैसे बनाए, उसका उन्हें ज्ञान ही नहीं। ऐसे ही लोगों के वोट, प्रचार द्वारा गुमराह करके या खरीदकर प्राप्त किए जा सकते हैं। सवाल लोकतांत्रिक चेतना पैदा करने का है। इसके लिए राजनीति आज के समाजसेवी, लोकसेवी, राष्ट्रसेवी के लिए उपयुक्त क्षेत्र नहीं है। उसका क्षेत्र समाजसेवा का है। क्रांति के जो स्फुलिंग आजादी के पूर्व देखने को मिले थे, उन्हें दावानल बनाने की आवश्यकता थी।

राजनीतिक स्वतंत्रता चरम लक्ष्य नहीं था। वह तो सामयिक लक्ष्य था। क्रांति का एक मोर्चा था। अब दूसरे मोर्चे भी तो सँभालने हैं। वे सब मोर्चे तो उपेक्षित पड़े रह गए हैं। राजनीतिक स्वाधीनता के बाद नैतिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक प्रगति की ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था, उतना नहीं दिया गया; जबकि यह बहुत आवश्यक था।

हमें सोए जनतंत्र को जगाना होगा। हम राजनीति को ही सब कुछ मानकर चलते रहे, सरकार को ही सब जिम्मेदारियों की वाहक मानते रहे, यही सबसे बड़ी भूल हुई है; जबकि ये दोनों तो जनता के सेवक भर हैं। जनतंत्र की स्वामी जनता है, वह अभी तक बेहोश पड़ी सो रही है; क्योंकि उसे जगाया नहीं गया। आज सबसे बड़ी आवश्यकता जनजागरण की है।

जनता सोई हुई है, उसे लोकतंत्र की महत्ता का पता नहीं है, इसलिए जैसा चल रहा है, वैसा वह स्वीकारती जा रही है। जिन लोगों के दिल में इस बात का दरद है कि राजनेताओं पर स्वार्थ हावी हो रहा है, उन्हें उसी भीड़ में टक्करें मारने के बजाय जनजागरण के लिए कार्य करना चाहिए। आज के राजनीतिक अखाड़ों और दलों के शुद्धीकरण का काम उन्हीं में रहकर किया जाए, यह संभव नहीं। उसके लिए तो उनके बाहर रहकर काम करना ठीक है।

यह बात नहीं कि जनता जनसेवियों का सम्मान नहीं करती या लोकतंत्र पर हावी होने वाले स्वार्थी तत्त्वों से त्रस्त नहीं है, पर उन्हें कोई मार्गदर्शन देने वाला ही नहीं मिलता और न ऐसे लोकसेवी ही नजर आते हैं, जो उनके स्थान पर प्रतिष्ठित किए जा सकें। ऐसे लोग हैं भी, तो वे असंगठित और बिखरे हुए हैं।

उनका एक संगठन हो। उनका सेवा और निष्ठा से दीप्त प्रखर व्यक्तिव ऐसा हो कि वे राजनीति में उतरे बिना भी समाज तंत्र को इतना सजग, चैतन्य बना सकें कि राजतंत्र उनके इशारे पर चले। जनता को जगाने, उसकी शैक्षणिक, बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति को सुधारने का जनशिक्षण भी चलता रहे, तभी हमारे जन में तंत्र को सँभालने की शक्ति, सामर्थ्य उत्पन्न हो सकेगी, फिर अर्थ उसके मध्य दीवार नहीं बन सकेगा। यह एक ऐसी प्रक्रिया-प्रशिक्षण व सीख है, जिसे हम सब और हमारा राष्ट्रीय जनजीवन अगले चुनाव महोत्सव में एक मार्गदर्शक सत्य के रूप में अपना सकते हैं। ❑

स्वाध्याय—कैसे जानें स्वयं को ?

साधना का एक महत्त्वपूर्ण व अभिन्न अंग 'स्वाध्याय' है, लेकिन स्वाध्याय की प्रक्रिया में जानने योग्य पहली बात यह है कि स्वाध्याय है क्या ? स्वाध्याय कहते किसको हैं ? क्या केवल पढ़ना-लिखना स्वाध्याय है ? सामान्य क्रम में जब हम कोई भी पुस्तक पढ़ें तो उसे स्वाध्याय कहेंगे, परंतु इसके साथ कुछ और बातें भी जुड़ी हुई हैं।

'स्वाध्याय' जैसा कि शब्द से प्रतीत होता है कि इसका अर्थ—'स्व+अध्ययन'। हम ऐसा कुछ पढ़ें, जो हमें स्वयं के अध्ययन के लिए प्रेरित करे। स्व-अध्ययन ही सही अर्थों में स्वाध्याय है। यदि हम कुछ भी पढ़ें, जैसे—हम भौतिकशास्त्र पढ़ें, रसायनशास्त्र पढ़ें, साहित्य पढ़ें या कुछ और भी पढ़ें, तो उसे हम स्वाध्याय नहीं कहेंगे, मनोरंजन के लिए अगर हम कुछ पढ़ें तो उसे हम स्वाध्याय नहीं कहेंगे, लेकिन जो हमें स्वयं को जानने के लिए, स्वयं से परिचित होने के लिए, स्वयं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, स्वयं का सम्यक रीति से अध्ययन करने के लिए प्रेरित करे—वही स्वाध्याय है।

उपनिषदों ने कहा है—**स्वाध्यायान्मा प्रमदः**, हमें स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। दो शब्द हैं—आलस्य और प्रमाद, जब हम शरीर से कोई काम करने में कतराते हैं, शरीर से काम नहीं करते, तो वह आलस्य होता है, लेकिन जब हम मानसिक शिथिलता बरतते हैं, तो वह प्रमाद कहलाता है; इसलिए स्वाध्याय करने के लिए मन में उत्साह भी होना चाहिए।

योगसूत्र में महर्षि पतंजलि कहते हैं—

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।

(पा.यो.सू.—2/44)

यदि स्वाध्याय हो तो इष्ट की प्राप्ति होती है, इसलिए स्वाध्याय सामान्य से कुछ अधिक गंभीर व गहन प्रक्रिया है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है कि जिसे करते हुए हम स्वयं को जान पाते हैं। जिसे करने पर हम स्वयं का अनुभव कर पाते हैं। स्वाध्याय हमें अपनी अनुभूतियों की ओर ले जाता है, अपने व्यक्तित्व की परतें खोलता है और धीरे-धीरे हम स्वयं को जानते हुए अपनी परतों का, अपने व्यक्तित्व के आयामों का, स्वयं की चेतना का परिचय पाते हैं। अब चिंतन का दूसरा बिंदु यह है कि स्वाध्याय कैसे करें ? स्वाध्याय की विधि क्या होनी चाहिए ? स्वाध्याय की विधि यह है कि सबसे पहले हमें कुछ अच्छी पुस्तकों का, अच्छे विचारों का चयन करना चाहिए।

हर पुस्तक हमें स्वाध्याय की ओर, स्वाध्याय के परिणाम की ओर नहीं ले जाएगी। यदि हम कोई सस्ते किस्म के उपन्यास पढ़ें, कहानियाँ पढ़ें, मनोरंजन के लिए पढें, मन को भटकाने वाली चीजें पढ़ें तो वो स्वाध्याय नहीं कहलाएगा। हम पहले सद्विचार और सुविचार, सन्मार्ग को प्रेरित करने वाले विचारों का चयन करें तो यह स्वाध्याय का पहला चरण है।

संसार में अनेक भाषाएँ हैं और अनेक भाषाओं में अनेक ग्रंथ हैं और उन पर अनेक पुस्तकें हैं, धर्मग्रंथ हैं, आध्यात्मिक ग्रंथ हैं, विचारपरक ग्रंथ हैं, समाजशास्त्र के ग्रंथ हैं, इस तरह बहुत सारे विषयों पर ग्रंथ हैं, तो हमें इनमें से ऐसी पुस्तकों का चयन करना है, जो हमें स्व को जानने के लिए, स्वयं के अध्ययन के लिए प्रेरित करें। ऐसी पुस्तकों व विचारों का चयन करना ही स्वाध्याय की प्रक्रिया का पहला चरण है।

पुस्तकों व सद्विचारों के चयन के लिए हमें सही समझ व मार्गदर्शन चाहिए कि हम यह जान सकें कि हम किसको पढ़ें। इसके बाद जब पुस्तक का चयन हो जाए तो हम उसे पढ़ें। पढ़ने की भी एक प्रक्रिया है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव कहते थे—सिंहावलोकन और विहंगावलोकन।

दो तरीके होते हैं देखने के व पढ़ने के। सिंहावलोकन का मतलब है कि सिंह की तरह हम देखें, बाहर वन में तो हम सिंह को देख नहीं सकते, घबराकर भाग जाएँगे, लेकिन यदि हम कहीं पर सिंह को देखें तब यह पता चलता है कि जब सिंह कहीं देखता है, तो वह बड़े धीरे-धीरे अपनी गरदन घुमाता है, बड़े धीरे-धीरे और एक-एक चीज को बड़ी बारीकी से, बड़ी सूक्ष्मता से देखता है। उसके देखने में

कोई शीघ्रता नहीं होती और इस तरह से देखने को सिंहावलोकन कहते हैं।

दूसरा शब्द है—विहंगावलोकन, कभी हम पक्षियों को देखें तो यह पता चलता है कि जो पक्षी कीड़े-मकोड़े खाते हैं, वो अपनी जगह पर शांत बैठे रहते हैं और देखते भी रहते हैं और ठीक उसी जगह पर चोंच मारते हैं, जहाँ पर कीड़े-मकोड़े होते हैं, वहाँ पर वो क्षणभर में कीड़े पकड़ते हैं और खाकर भाग जाते हैं। पक्षी क्षणभर में दाना पकड़ता है और भाग जाता है। वो बहुत सारी चीजों को नहीं देखता, लेकिन अपने काम की चीजें देख लेता है। जब हम स्वाध्याय करते हैं तो हमें सिंहावलोकन और विहंगावलोकन एक साथ करना आना चाहिए।

हम पुस्तक को पढ़ें, लेकिन पढ़ने के बाद क्या करना चाहिए कि पुस्तक में कितनी महत्त्वपूर्ण बातें हैं उन्हें नोट करना चाहिए और उन पर ध्यान देना चाहिए। हर पुस्तक की एक विषयवस्तु होती है, एक केंद्रीय सूत्र होता है, केंद्रीय विचार होता है; जिसमें कि पुस्तक के सारे विचार पिरोए होते हैं। हम उनको कहीं नोट करें कि पुस्तक का केंद्रीय विचार क्या है?

दूसरी बात उस केंद्रीय विचार के साथ जुड़ी होती और वह है—लेखक का मंतव्य। लेखक की, विचारक की सोच, उसकी दृष्टि उस लेख के साथ जुड़ी होती है। हर विचारक के, हर लेखक के सोचने का, देखने का, अनुभूति पाने का और अनुभूति देने का, अनुभूति करने का और उसे अभिव्यक्त करने का एक अपना ढंग होता है। जो भी पुस्तक पढ़ते हैं और जिन्होंने चीजों को गंभीरतापूर्वक पढ़ा है, वो इस बात को समझ जाएँगे।

यह हमें पुस्तक को पढ़कर जान लेना चाहिए कि लेखक हमसे अपनी किस अनुभूति को बाँटना चाहता है। फिर उसके बाद क्या होता है कि हर पुस्तक में कुछ मुख्य बिंदु होते हैं, उन मुख्य विचारों की अभिव्यक्ति कितने आयामों में है, हमें वो कहीं लिख लेना चाहिए। अगर ये बातें हमने नोट कर ली हैं, तो क्या होगा कि वो पढ़ी हुई पुस्तक हमारी स्मृतियों में और हमारे विचारों में बस जाएगी और जब हम चाहेंगे, तब हम उसके पन्ने पलट पाएँगे।

इसके बाद भी हमें अपनी मौलिकता नहीं खोनी चाहिए। हर लेख में, हर पुस्तक में एक दृष्टि होती है, एक अनुभूति, एक सोच होती है, जिसको कि लेखक अनुभव करता है और उसे हमारे साथ बाँटता और उसे अभिव्यक्त करता है।

दूसरी बात यह है—पुस्तक या लेख पढ़ने से जो विचार व दृष्टि हम लेखक के द्वारा पा रहे हैं, उनमें कुछ हमारी मौलिकता है। इसलिए पुस्तक पढ़ने के बाद जब हम उसके महत्त्वपूर्ण बिंदुओं के बारे में लिखें तो हमें कुछ शब्दों में अपनी बात भी कहनी चाहिए। हमारी सोच भी उभरकर आनी चाहिए कि इसमें महत्त्वपूर्ण बात क्या है, इस पुस्तक की समीक्षा क्या है—यह भी हमें नोट करना चाहिए।

इस तरह स्वाध्याय के क्रम में पहला चरण पुस्तक को सही ढंग से पढ़ना हो गया और पढ़े हुए को सहेजना हो गया, लेकिन उसके साथ हमारी एक कार्ययोजना भी होनी चाहिए। कार्ययोजना अर्थात अगर इन विचारों को व्यक्ति के जीवन में, परिवार में या समाज में क्रियान्वित करें तो वो कैसे घटित होगा?

इस कार्ययोजना को बनाने के लिए पहले हम देखेंगे कि इस पुस्तक से कौन-सी चीजें हमसे व हमारे जीवन से जुड़ी हुई हैं। हमारे निजी जीवन को यह पुस्तक कितना प्रेरित करती है, प्रभावित करती है, चलाती है, क्या करती है—इसको भी हम देखें। जब हम इस ढंग से पुस्तक की समालोचना करेंगे तो हमें एक अनुभूति प्राप्त होगी, जिसमें कि हम अपने को देख सकेंगे, अपने को जान सकेंगे और अपने व लेखक के विचारों को हम क्रियान्वित करने का तौर-तरीका निकाल सकेंगे और इसके साथ ही एक बेहतर कार्ययोजना बना सकेंगे—जिसे जीवन में अपनाया जा सके।

यह कार्ययोजना बड़ी कीमती है, बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए पुराने जमाने में लिखी हुई पुस्तकें कम होती थीं, गुरुमुख से सुने हुए सद्विचार ज्यादा होते थे। गुरु अपनी अनुभूतियों को शिष्यों के साथ बाँटते थे, तो उस समय हम स्वाध्याय की प्रक्रिया को तीन आयामों में बाँटा करते थे—**श्रवण, मनन व निदिध्यासन।** श्रवण यानी—सम्यक श्रवण, सही-सही सुनना, हम उसे सुनें, जो कहा जा रहा है और उसे हम पूरी एकाग्रता, पूरी तल्लीनता और पूरी तन्मयता के साथ सुनें।

पहले श्रवण के द्वारा हमने बात सुनी इसीलिए प्राचीन युग में हमारे शास्त्रों में दो ही बातें होती थीं, एक श्रुति और एक स्मृति। श्रुति यानी जो सुना गया, इसीलिए उपनिषदों को श्रुति कहा गया, इसमें गुरु ने सुनाया और शिष्य ने सुना।

सुनने के बाद—श्रवण के बाद मनन। मनन में वो बातें आती हैं, जिनके कि अनुसार हमें मुख्य बिंदुओं को समझना होता है, अपने विचारों को स्पष्ट करना होता है और एक कार्ययोजना बनानी होती है। कार्ययोजना तभी बनती है, जब हम सही ढंग से मनन करते हैं। पढ़ी हुई चीजें भी हमें तभी समझ में आती हैं, जब हम उनका मनन करते हैं। पढ़ने के बाद जिन विचारों को हम ग्रहण करते हैं, उनको कहते हैं निदिध्यासन। श्रवण कहते हैं—सुनने अर्थात लिसनिंग को और मनन कहते हैं—कन्टेंप्लेशन अर्थात एकाग्रता को और निदिध्यासन कहते हैं—मेडिटेशन को, ध्यानस्थ हो जाने को। विचार को ले करके ध्यानस्थ हो जाने को।

इस विषय में आचार्य शंकर स्वाध्याय के गुण बताते हुए कहते हैं—**श्रवणं शतगुणं मननं, सहस्त्रं निदिध्यासनं अनंतं निर्विकल्पं। श्रवणं शतगुणं मननं**, श्रवण यानी जो सुना गया, उससे सौ गुना प्रभावशाली है मनन, **सहस्त्रं निदिध्यासनं,** उस पर अगर हम ध्यान लगाएँ तो वह सहस्त्र गुना हो गया और अगर किसी विचार के साथ हम एकाग्र हो गए और वो विचार हमारे अंदर समा गया, हमसे एकाकार हो गया, एकात्म हो गया, तो आचार्य कहते हैं—**अनंतं निर्विकल्पं**। फिर वो विकल्प नहीं रहा, बल्कि निर्विकल्प हो गया।

जब पतंजलि स्वाध्याय की चर्चा करते हैं तो पहली बात स्वाध्याय के बारे में कहते हैं कि हम पुस्तक पढ़ते हैं, यह स्वाध्याय का आरंभिक चरण है, लेकिन स्वाध्याय का उन्नत चरण क्या है? इसका उन्नत चरण है—मंत्रजप। यह मंत्रजप भी एक प्रकार का स्वाध्याय है। उदाहरण के लिए जब हम गायत्री मंत्र का जप करते हैं, तो बार-बार मंत्र का उच्चारण करते हैं और तब उस मंत्र की गहराई में जाते हैं।

मंत्रजप करने से पहले गुरु से मंत्र की दीक्षा ली जाती है, जिसमें गुरुमुख से हम मंत्र सुनते हैं, यह सुनना श्रवण है। इसके बाद जब हम मंत्र जपते हैं, तो उस पर मनन करते हैं, यह मनन जितना गहरा होता है, जितना सघन होता है, उतना व्यक्ति के जीवन में फलित होता है और मंत्र जब ध्यान में उतरने लगता है तो फिर मंत्र व्यक्ति की जीवन चेतना में, उसके व्यक्तित्व के आयामों में घुलने लगता है और फिर एक ऐसी स्थिति आती है, जब मंत्र निर्विकल्प हो जाता है। ऐसा होने पर व्यक्ति का मंत्र के साथ तादात्म्य हो जाता है, और वह अपने मंत्र के इष्टस्वरूप को प्राप्त हो जाता है। जैसे व्यक्ति यदि गायत्री मंत्र जप रहा है तो वह मंत्र के निर्विकल्प होने पर गायत्रीमय हो जाता है।

इस स्थिति के विषय में आचार्य शंकर कहते हैं कि **अनंतं निर्विकल्पं,** अनंतं क्यों? क्योंकि यहाँ पर मंत्र का देवता, मंत्र की चेतना और साधक एकाकार हो जाते हैं, एक ही में लीन हो जाते हैं। इसीलिए स्वाध्याय साधना भी है, साधन भी है और स्वाध्याय सिद्धि भी है। स्वाध्याय साधन है, जब हम उसे अपनाते हैं; जब हम श्रवण करते हैं तो स्वाध्याय साधन होता है; जब हम मनन और निदिध्यासन करते हैं तो स्वाध्याय साधना होती है और जब निदिध्यासन के बाद अनंतं निर्विकल्पं में पहुँचते हैं तो स्वाध्याय सिद्धि हो जाती है। इस तरह स्वाध्याय एक बड़ी महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसका अगला बिंदु है कि स्वाध्याय के परिणाम क्या होंगे; क्योंकि अभी तक तो स्वाध्याय की प्रक्रिया हुई, फिर इसका अगला चरण क्या है? इसके परिणाम क्या हैं?

अगर हम मंत्र जपते हैं या पुस्तक पढ़ते हैं तो पहली बात है कि स्वाध्याय हमारे व्यक्तित्व की, हमारे विचारों की पुनर्संरचना करता है। इसके माध्यम से हमारा वैचारिक नवनिर्माण होता है। हर व्यक्ति की अपनी एक सोच है, उसके विचार हैं, भाव हैं, दृष्टिकोण है। देखा जाए तो एक छोटे बच्चे की भी अपनी एक सोच होती है। उसका भी देखने का अपना एक ढंग है, वह किसी चीज को पसंद करता है और किसी चीज को नापसंद करता है; क्योंकि उसके पास भी सोच-विचार का, दृष्टिकोण का, भावनाओं का अपना एक दायरा है। स्वाध्याय क्या करता है? स्वाध्याय हमारे सोच-विचार के इस दायरे को, हमारे विचारों को परिष्कृत करता है, उनकी पुनर्संरचना करता है। इस तरह स्वाध्याय की प्रक्रिया में वैचारिक पुनर्संरचना (कॉग्निटिव रिस्ट्रक्चरिंग) होती है, यह हमारी भावनाओं का परिशोधन करता है और फिर इसके बाद यह हमारे व्यवहार का भी परिमार्जन करता है।

इस तरह स्वाध्याय से हमारे विचार, भाव व व्यवहार—प्रेरित होते हैं, प्रभावित होते हैं, परिमार्जित होते हैं, परिष्कृत होते हैं और सच पूछें तो इससे व्यक्तित्व की पुनर्संरचना होती है। इस तरह से स्वाध्याय के परिणामस्वरूप हमारा व्यक्तित्व एक नए रूप में ढलता है और उसका रूपांतरण होता है। ❑

ईर्ष्या से ऐसे बचें

ईर्ष्या स्वभाव की एक ऐसी विकृति है, जो व्यक्ति को अंदर से खोखला कर देती है और उसे सुख-चैन से नहीं रहने देती। ईर्ष्या के मूल में है स्व-महत्त्व की इच्छा, और यह खासकर तब जन्म लेती है, जब हम दूसरों से अपनी तुलना कर रहे होते हैं। व्यक्ति में ईर्ष्या का भाव तब जगता है, जब वह हीनता के भाव से ग्रसित होता है और पहचान पाने के लिए स्वयं को सिद्ध करना चाहता है।

यह एक स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्ति है कि जिस क्षेत्र में व्यक्ति मान-सम्मान चाहता है उस क्षेत्र में यदि कोई दूसरा अव्वल आता है तो उसमें ईर्ष्या का भाव जगता है, लेकिन ऐसी स्थिति में दूसरे को नीचा दिखाने में अपनी ऊर्जा बरबाद करना किसी भी रूप में उचित नहीं। ऐसे में ईर्ष्या प्रसन्नता की सबसे बड़ी दुश्मन बन जाती है, जो आजकल स्कूल, कॉलेज, घर, परिवार एवं समाज में गला काट प्रतियोगिता, तनाव और नाना प्रकार के नकारात्मक भावों का कारण बनी हुई है।

कोई अपने सहकर्मी की बॉस द्वारा प्रशंसा को नहीं सुन सकते, कोई अपने प्रतिद्वंद्वी की प्रगति और फलते-फूलते व्यवसाय को नहीं देख सकते तो कोई अपने संबंधियों को आगे बढ़ते नहीं देख सकते। ऐसे में उनकी नुक्ताचीनी करने पर वे झूठा संतोष पाते हैं और सदा ये दूसरों की निंदा-चुगली में ही व्यस्त रहते हैं। इस रूप में ईर्ष्या एक तरह की विकृति है, जिसमें ईर्ष्यालु व्यक्ति अपने आभासित दुश्मन को संकट में देखकर आनंद पाता है और उसकी प्रगति पर दु:खी होता है। दूसरों का दु:ख सामान्य व्यक्ति में सहानुभूति का भाव जगाता है, लेकिन ईर्ष्यालु में नहीं। एक ईर्ष्यालु व्यक्ति कभी चैन से नहीं बैठ पाता। वह हमेशा दूसरों से असंतुष्ट ही रहता है तथा कभी उनकी अच्छी चीजों, गुणों की तारीफ नहीं कर पाता।

ऐसा व्यक्ति हमेशा दूसरों की बुराइयों की तलाश में रहता है। यदि उसे वे बाहर से देखने पर नहीं मिलते तो वह उनको मन बहलाने के लिए स्वयं ही बनाकर, उन्हें लांछित करने, नीचा दिखाने तथा उनके सम्मान को बरबाद करने में जुटा रहता है। ईर्ष्या से निजात पाने के लिए हमें सबसे पहले यह जानना होगा कि यह एक तरह का मानसिक विकार है तथा इसको ठीक करने के उपाय हमें सदा करने चाहिए। दूसरों के विषय में निरर्थक सोचकर अपनी शक्ति व ऊर्जा को बरबाद करने में किसी प्रकार की समझदारी नहीं है। जिस क्षण हम किसी से ईर्ष्यावश घृणा करना शुरू करते हैं, उसी क्षण हम अपने सुख-चैन, नींद, स्वास्थ्य और खुशियों की चाबी दूसरों के हाथों में थमा देते हैं। इस मन:स्थिति में हमारा भोजन भी सही ढंग से नहीं पच पाता और तब हम चैन से सो भी नहीं पाते।

ऐसे में जीवन से खुशियाँ चली जाती हैं और उसमें तनाव का प्रवेश हो जाता है। यदि हम ठहरकर विचार करें, तो पाएँगे कि ईर्ष्या से हमें कुछ नहीं मिला। हमारे ईर्ष्या करने से किसी और की प्रगति रुकने वाली नहीं, बल्कि हम स्वयं की मानसिक शांति भी खो बैठते हैं और अंदर से कुढ़ते-जलते रहते हैं। यह हमारा ध्यान भंग करती है और हम पूरे मनोयोग से अपने लक्ष्य पर केंद्रित नहीं हो पाते। संक्षेप में ईर्ष्या हमारी प्रगति में रोड़ा बन जाती है। ईर्ष्या के चलते व्यक्ति दूसरों की अच्छी बातों की प्रशंसा करना तथा उनसे सीखना भी बंद कर देते हैं। यहाँ तक कि ईर्ष्या हमारे मन को इतना विकृत कर देती है कि हम स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ देखने लगते हैं, सिर्फ इसलिए कि हम दूसरों को स्वयं से बेहतर नहीं देख पाते।

हमें इस अवस्था में विचार करना चाहिए कि हम सब ईश्वर की संतान हैं तथा अनंत संभावनाओं एवं क्षमताओं से भरपूर हैं। समाज में सभी का अपना स्थान है और सबका अपना महत्त्व है। यदि हमें तुलना करनी ही है तो स्वयं-की-स्वयं से तुलना करें। इससे हम दूसरों से तुलना के अनावश्यक कार्य से मुक्त होंगे, ईर्ष्या के भाव पर अंकुश लगेगा तथा हम अपनी लक्ष्यसिद्धि की ओर बढ़ रहे होंगे।

दूसरों की निंदा व दोषारोपण से अपना व्यक्तित्व ही लघुता को प्राप्त होता है। धीरे-धीरे हम अपनी विश्वसनीयता और प्रामाणिकता भी खोने लगते हैं और एक दिन हमारे विचारों को कोई गंभीरता से नहीं लेता। हमें उसमें जो मिला है, उससे हमें संतुष्ट रहना सीखना चाहिए। हमें वही मिलता है, जिसके हम पात्र होते हैं और यदि हम कुछ और अधिक या बेहतर चाहते हैं, तो सही मार्ग पर चलते हुए हमें कठोर श्रम करना सीखना होगा। साथ ही संतोष भी एक बहुत बड़ा गुण है, जिसका हमें अभ्यास करना चाहिए।

जिसके हम अधिकारी नहीं, वह हमारे पास अधिक देर नहीं टिक सकेगा, इसके लिए हम भले चाहे कितनी ही जोड़-तोड़ क्यों न कर लें? जब भी ईर्ष्या का भाव उठे, मन की अवस्था का बारीकी से अध्ययन करें। ईर्ष्या का भाव व्यक्ति से अलग होता है। व्यक्ति पर नहीं, भाव पर एकाग्र होने का अभ्यास करें। ऐसा करने पर ईर्ष्या धीरे-धीरे पिघल जाएगी, गायब हो जाएगी। साथ ही ईर्ष्या का प्रतिकार प्रेम, प्रशंसा, दया जैसे भावों के साथ करने का प्रयास करें। दूसरों को नीचा दिखाने में अपनी ऊर्जा बरबाद करने के बजाय दूसरों के श्रम का सम्मान करें तथा स्वयं उन गुणों को धारण करने पर विचार करें।

दूसरों की उन्नति पर दुःखी होने के बजाय, अपनी योग्यता और क्षमता को तराशें। साथ ही यह एहसास भी महत्त्वपूर्ण है कि यदि हम स्वेच्छा से परिवर्तित नहीं होते तो प्रकृति इसके उपचार की व्यवस्था कर लेगी। प्रकृति कई झटकों के माध्यम से हमें संकेत देती है, अवसर देती है कि हम सत्य को स्वीकार करें तथा सही मार्ग का अनुकरण करें। प्रकृति तनाव, दबाव आदि के रूप में हमें सुधरने का मौका देती है। ईर्ष्या के वशीभूत हम सत्य को विकृत रूप में देख रहे होते हैं और जैसे-जैसे यह बढ़ती है, मन का कष्ट और पीड़ा और भी बढ़ते जाते हैं। कुछ सप्ताह, महीनों या सालों की ऐसी यंत्रणा के बाद अंततः स्वयं ही हम यह स्वीकार करने को बाध्य होते हैं कि दूसरा किसी रूप में हमसे श्रेष्ठ था और हम किसी और रूप में।

सबकी अपनी भिन्नता और मौलिकता होती है। हमें उसी रूप में विकसित होना चाहिए। ईर्ष्या-मन और बुद्धि पर कब्जा कर लेती है और तब हम सही-गलत में भेद नहीं कर पाते। ईर्ष्या हमें जो नहीं है, उसके दर्शन कराती है। हम भ्रम के शिकार हो जाते हैं और सत्य से दूर हो जाते हैं। अतः ईर्ष्या जैसे नकारात्मक भाव पर नियंत्रण के लिए हमें मन और बुद्धि के संतुलित प्रयोग का अभ्यास करते रहना चाहिए। नियमित रूप से हम यह अभ्यास करते रहें कि हमारे मन में किसी तरह की ईर्ष्या की भावना तो नहीं है और इसके नकारात्मक प्रभावों से सावधान रहें। इसका एक प्रभावी तरीका स्वाध्याय, सत्संग, आत्मानुशासन और ध्यान का अभ्यास है। हमें इनका सतत अभ्यास करना चाहिए।

प्रायः हम इन्हें बाद के लिए टालते रहते हैं, या इनका महत्त्व नहीं समझ पाते। जब संकट की स्थिति आती है, तो इन पर विचार करने लगते हैं। अहंकार भी इसमें कार्य करने से रोकता है, जो अहं तुष्टि के भाव में रहता है; जबकि अनवरत और सजग अभ्यास ही हमें इस अवस्था से उबारता है। धैर्यपूर्वक आत्मनिरीक्षण एवं आत्मपरिष्कार में ही शांति और प्रसन्नता का मर्म छिपा है। ऐसा ईर्ष्या को त्यागने से ही संभव है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006
Yes Bank	Dampier Nagar, Mathura	YESB0000072	007263400000143

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

जहाँ प्रेम है, वहाँ है आनंद

आत्मज्ञान की परम उपलब्धि के बाद महावीर लोक-कल्याण हेतु जनसामान्य के बीच भ्रमण करने लगे। वे जहाँ भी जाते, वहाँ उनके दर्शन करने एवं उनका उपदेश पाने के लिए हजारों लोग जमा हो जाते थे। उनके अमृत उपदेश को पाकर कोटिश: लोगों का जीवन बदल चुका था।

भगवान महावीर के ज्ञानोपदेश पाकर लोग सहज ही मुक्तिपथ, धर्मपथ, सत्यपथ पर चलने को प्रेरित होते थे। राजा-महाराजाओं से लेकर सामान्य जनों के बीच महावीर की ख्याति पूर्णिमा के चाँद की तरह फैल रही थी। अचानक एक दिन भ्रमण करते हुए भगवान महावीर वेगवती नदी के किनारे स्थित एक उजाड़ गाँव के समीप पहुँचे।

गाँव के किनारे एक मंदिर बना हुआ था। महावीर उसी मंदिर के पास पहुँचे। उस एकांत स्थान को देखकर महावीर ने सोचा, यह स्थान उनकी साधना के लिए ठीक रहेगा। उसी समय उस गाँव के कुछ लोग महावीर के पास पहुँचे और उनसे बोले—"महात्मन्! आप इस स्थान पर नहीं ठहरें।" "क्यों?"—महावीर ने पूछा। "क्योंकि इस मंदिर में एक विशालकाय दैत्य रहता है महात्मन्! वह लोगों को बहुत परेशान करता है। यहाँ तक की वह कई लोगों की हत्या भी कर चुका है। यहाँ आस-पास बिखरी हुई अस्थियाँ कुछ ऐसे ही अभागे लोगों की हैं, जो शूलपाणी नामक उस दैत्य के हाथों मारे गए हैं। उसके कारण इस गाँव के लोग सदा भयभीत रहते हैं।"

गाँववाले बोले—"यह गाँव भी कभी खुशहाल रहा करता था, पर शूलपाणी के कारण ही यह गाँव अब वीरान हो चला है। आप तो वैसे ही बड़े कृशकाय व दुबले-पतले हैं। वह आपको पलभर में ही समाप्त कर डालेगा।" यह सुनकर भी सदा अहिंसा की परम भावना में अवस्थित रहने वाले महावीर के चेहरे पर अपूर्व शांति छाई रही।

भगवान महावीर को वहाँ से चले जाने का अनुरोध कर ग्रामीण भी वहाँ से लौट चुके थे। महावीर ने उनके भय को दूर करने की ठानी; क्योंकि वे जानते थे कि जहाँ हिंसा है, वहीं भय है। जहाँ भय है, वहीं दु:ख है और जहाँ निर्भयता है, वहीं आनंद है।

ग्रामवासियों को भयमुक्त करने के विचार से महावीर उसी स्थान पर बैठ गए। वे वहाँ अवस्थित मंदिर के प्रांगण में एक ही स्थान पर खड़े होकर ध्यान करने लगे। वे जल्द ही ध्यान की गहराई में उतरकर आत्मकेंद्रित हो गए। बाह्य जगत से उनका संपर्क विच्छेद हो गया। उधर अँधेरा घिरते ही वातावरण में घोर सन्नाटा छा गया, पर अगले ही पल उस सन्नाटे भरे वातावरण में भयंकर गुर्राहट गूँजने लगी।

हाथ में भाला लिए शूलपाणी वहाँ आ पहुँचा। उसने भगवान महावीर को क्रोधभरी नजरों से देखा। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उससे भयभीत हुए बिना उसके सामने कोई व्यक्ति अब तक कैसे टिका है? पर महावीर तो ध्यान की गहराई में उतरकर चेतना के एक नए आयाम में पहुँच चुके थे। वे अपनी जगह पर यथावत् बने रहे।

उधर शूलपाणी क्रोध में और भी अधिक गुर्राने व गरजने लगा, पर महावीर इन सभी से बेखबर ध्यान में डूबे रहे। क्रोध में आकर शूलपाणी तीखे नख व दाँतों से उन पर प्रहार करने लगा। इतने पर भी महावीर ध्यानमग्न रहे, अविचल रहे, तो शूलपाणी भाले की नुकीली नोक उनके आँखों, कान, नाक, गरदन व सिर में चुभोने लगा, लेकिन महावीर ने शरीर से तो जैसे संबंध-विच्छेद ही कर लिया था। अत: वे तब भी अविचलित, निर्द्वंद्व व निर्भय बने रहे। वह ध्यान की गहराई में उतरे हुए महावीर की सहनशीलता की पराकाष्ठा थी, जो केवल उन जैसे तीर्थंकर में ही हो सकती थी।

ऐसी अविचल, निर्द्वंद्व दशा तो बुद्धपुरुषों में ही हो सकती है। शूलपाणी अब समझ गया कि वह मनुष्य निश्चित ही कोई असाधारण पुरुष है, देव पुरुष है, दिव्य पुरुष है। ऐसा जानकर वह भय से काँपने लगा, थर्राने लगा।

तभी भगवान महावीर के शरीर में से एक दिव्य आभा निकलकर शूलपाणी के शरीर में समा गई और देखते-ही-देखते उसका क्रोध शांत हो गया। उसका गर्व चूर-चूर हो

गया। वह अप्रतिम शांति व शीतलता का अनुभव करने लगा। अब तक किए गए बुरे कर्मों पर उसे ग्लानि और पश्चात्ताप होने लगा। वह महावीर के चरणों में लोट गया और उनसे क्षमा माँगने लगा। भगवान महावीर ने तब अपने नेत्र खोले और करुणापूर्ण स्वर में बोले—"शूलपाणी! क्रोध से हिंसा की उत्पत्ति होती है, हिंसा से और हिंसा की उत्पत्ति होती है और प्रेम-से-प्रेम की उत्पत्ति होती है। जहाँ प्रेम है; वहीं अहिंसा है; वहीं शांति है; वहीं सुख है; वहीं आनंद है। यदि तुम किसी को भयभीत न करो तो तुम हर भय से मुक्त रहोगे।" भगवान महावीर के वचन सुनकर शूलपाणी की आँखें खुल गईं और वह सच्चे पथ पर बढ़ने के लिए संकल्पित हो उठा। ❑

संत पुरंदर भगवान के सच्चे भक्त थे एवं परम वैरागी स्वभाव के थे। गरीब होने पर भी निर्लोभी थे। भिक्षा माँगकर जीवनयापन करते थे। एक बार विजयनगर के राजा कृष्णदेव ने गृहस्थ रहते हुए भी उनके निर्लोभी होने की बात सुनी तो उन्होंने संत पुरंदर की परीक्षा लेने का निर्णय लिया। उन्होंने संत को भिक्षा में हीरे और रत्न मिला देने का आदेश दिया। एक माह तक यही क्रम चलता रहा। माह के अंत में राजा वेश बदलकर संत पुरंदर के घर पहुँचे। उन्होंने घर में घुसते ही संत पुरंदर की पत्नी की आवाज सुनी। वह पति से कह रही थी कि आजकल आप किस गरीब के यहाँ से भिक्षा माँगकर लाते हैं, वह चावल में कंकड़ मिलाकर देता है। मैं उन्हें चुनते-चुनते परेशान हो जाती हूँ। राजा अंदर गए तो देखा कि कोने में उनके द्वारा भिक्षा में भेजे हुए हीरे-मोतियों का ढेर लगा हुआ है।

संत पुरंदर ने वेश बदले हुए राजा को पहचान लिया। संत पुरंदर ने महाराज से कहा—"मैं जानता था कि आप मेरी भिक्षा में हीरे-मोती मिलाकर भेज रहे हैं और इस प्रकार मेरी वैराग्य की परीक्षा ले रहे हैं, परंतु मुझ ब्राह्मण के लिए हीरे व कंकड़ समान हैं, मेरे लिए उन दोनों में कोई अंतर नहीं है। आप इन्हें ले जाएँ और गाँव में मीठे पानी के कुएँ खुदवा दें। इन हीरे-मोतियों की सार्थकता इसी में है।" राजा संत पुरंदर की विरक्ति-भावना के समक्ष नतमस्तक हो गए।

मन के साधे सब सधे

हमारा मन एवं हमारा चिंतन हमारे जीवन में खुशियों के लिए, पीड़ा के लिए, दु:ख के लिए जिम्मेदार हैं। मन से ही हमें सुख-दु:ख की अनुभूति होती है। मन की दिशा क्या है और इसकी दशा क्या है—इन पर निर्भर करता है कि हम सुखी होंगे या दु:खी होंगे। अगर परिस्थितियाँ मन के अनुकूल हैं, अगर वातावरण मन के अनुकूल है तो हम सुखी हैं। मन के प्रतिकूल वातावरण है, मन के प्रतिकूल यदि परिस्थितियाँ हैं तो हम दु:खी हैं। कई बार ऐसा होता है कि जो परिस्थितियाँ हैं, जो वातावरण है, मन स्वयं को उनके अनुकूल बना लेता है। जिसे यह कला आती है, मन के अनुकूलन की, एडेप्टेशन की तो वो हर परिस्थिति में सुखी रहता है। शास्त्रों में, आध्यात्मिक पुस्तकों में, योगविद्या में हमें जो सूत्र बताए गए हैं, हमें जो संकेत दिए गए हैं, वे कहते हैं कि आप हर परिस्थिति में सुखी रह सकते हैं।

आवश्यक यह नहीं है कि आपके अनुकूल जो परिस्थितियाँ हैं, आपके प्रतिकूल जो परिस्थितियाँ हैं, उन परिस्थितियों के अनुरूप आपका रुझान क्या है? इस पर आपके सुख-दु:ख निर्भर नहीं करते। आपकी मानसिक अवस्था कुछ ऐसी होनी चाहिए, जिसमें आप सुख महसूस कर सकें, जिसमें आप प्रसन्न महसूस कर सकें; इसीलिए जब हम उन व्यक्तियों के जीवन को देखते हैं जिनके जीवन के सामान्य-आर्थिक-पारिवारिक कारण ऐसे नहीं थे, जहाँ पर वो सुखी रह सकते थे, लेकिन फिर भी हम देखते हैं कि वो वहाँ पर परम सुखी थे, चाहे वो नामदेव हों, चाहे कबीर हों। दु:ख की परिस्थिति भी उनके जीवन में सुख की परिस्थितियाँ लाई। उनकी मन:स्थिति में प्रसन्नता, खुशी सदा विद्यमान रही। ऐसा इसलिए; क्योंकि उन्होंने अपने मन को सदा शांत व सुखी रखा।

देखा जाए तो इधर कुछ दशकों से मनुष्य का मन विकृत हुआ है। जीवन के सुख के लिए कहे जाने वाले साधन जुटे हैं, समृद्धि बढ़ी है, आर्थिक स्थिति थोड़ी सुधरी है, लेकिन खुशी चली गई है, प्रसन्नता कहीं विलुप्त हो गई है। इसकी कई बार समाचारपत्रों में चर्चा भी हुई। इस पर विचारकों ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि हमारे देश में समृद्धि का स्तर जाँचने के लिए जीडीपी का आकलन होता है, ग्रॉस डेवलपमेंट—सकल उत्पाद दर का आकलन होता है; जबकि भूटान में समृद्धि स्तर जानने के लिए हैप्पिनेस-प्रसन्नता की दर का आकलन होता है।

हमारे देश में कहाँ कितना उत्पाद हुआ, कितना आयात आया, कितना निर्यात बढ़ा, इन सब चीजों से हम राष्ट्र की समृद्धि मापते हैं; जबकि भूटान में समृद्धि का मापन इस बात से होता है कि उनका देश कितना खुशहाल है। अत: खुशहाली का संसाधनों से सीधा कोई रिश्ता नहीं है। यदि रिश्ता होता तो अधिक संसाधन होने पर व्यक्ति खुश होता और कम संसाधन होने पर व्यक्ति दु:खी होता, लेकिन कम या अधिक संसाधन में भी व्यक्ति अपने सकारात्मक दृष्टिकोण को अपनाकर खुश रह सकता है। मान लीजिए, हम पहले छोटे घर में रहते थे, हमें थोड़ा बड़ा घर मिला तो हमारे घर-परिवार के सदस्य थोड़े खुश हुए; हमारे घर में फ्रिज नहीं था; हमारे घर में टेलीविजन नहीं था; हमारे घर में फ्रिज आया; हमारे घर में टेलीविजन आया; लोग इससे थोड़े और खुश हुए, लेकिन वो खुशी स्थायी नहीं रहती है। दो-चार दिन में वो गायब हो जाती है, खो जाती है, फिर वो टेलीविजन हमें वो खुशहाली नहीं दे पाता, जो उसने हमें पहली बार दी थी।

कई बार तो एक चीज को ले करके घर के सदस्यों में झगड़े होने लगते हैं तो खुशहाली का मापन क्या है? खुशहाली का कारण क्या है? खुशहाली कैसे हमारे पास स्थिर रह सकती है? इन प्रश्नों का एक ही जवाब है—हमारा मन। संसाधनों के बढ़ने के बावजूद, स्थितियों के बदलने के बावजूद, धन में वृद्धि होने के बावजूद आप देखेंगे कि कुछ दशकों से, कुछ सालों से मन की परेशानी बहुत बढ़ी है। आदमी मन के कारण परेशान हुआ है और उसका सबसे बड़ा परिणाम है—आत्महत्याओं की दर का बढ़ना। सारे आकलन, सारे आँकड़े कहते हैं कि आत्महत्या की दर बढ़ी

है, कुछ ऐसा हुआ है कि आदमी वर्तमान परिस्थितियों में तनाव को सहन नहीं कर पाता।

थोड़ी-सी चीज उसमें इतनी उत्तेजना भरती है, इतनी उत्तेजना पैदा करती है कि वो मरना चाहता है और ऐसा नहीं है कि आत्महत्या की दर किसी एक वर्ग में बढ़ी है, यह सब में बढ़ी है—स्त्रियों में बढ़ी है, पुरुषों में बढ़ी है; सबसे बड़ी बात है कि यह किशोरों में भी बढ़ी है। यही नहीं आत्महत्या की दर बढ़ने के साथ-साथ किशोरों में, युवाओं में नशे की लत भी बढ़ी है। प्रश्न उठता है कि आखिर ऐसा क्या है ? आखिर ऐसी क्या चीजें आ गई हैं—हमारी जिंदगी में, जो हमें परेशान कर रही हैं और उस परेशानी को भुलाने के लिए हमें नशा लेना पड़ता है और इस परेशानी को यदि हम नहीं खतम कर पाते तो हमें अपने जीवन को समाप्त करना पड़ता है। कहते हैं कि मनोरंजन के बाद तो परेशानी हलकी होनी चाहिए, मनोरंजन के साधन तो बड़े प्रभावकारी हैं।

पहले टीवी मनोरंजन का साधन था, अब तो मोबाइल भी मनोरंजन का साधन बन गया है, लेकिन साधन और उपकरण मिलकर भी हमारे मन का रंजन नहीं कर पा रहे हैं, मन को खुशियाँ नहीं दे पा रहे हैं और हमें खुशियाँ तभी मिलती हैं, जब हमारा मन हमें खुशी की अनुभूति दे। इसलिए इस खुशी के लिए, प्रसन्नता के लिए हमें अपने मन से परिवर्तन आरंभ करना पड़ेगा। हमें अपने मन को सुधारना पड़ेगा, हमें अपने मन को स्वच्छ और शुद्ध करना पड़ेगा। मन को स्वच्छ करना और मन को स्वस्थ करना ही ध्यान है। ध्यान, मन का स्नान है। हम कहीं बाहर से आए हुए होते हैं, थके-हारे होते हैं, धूल होती है हमारे शरीर पर, रास्ते का बोझ होता है और जब हम घर में आकर स्नान करते हैं, तो हमें बड़ा अच्छा लगता है, बड़ी ताजगी-सी लगती है; क्योंकि स्नान में शरीर की धूल व मैल धुल जाते हैं।

यदि हम मन की धूल, मन का कूड़ा-करकट हटा सकें, मन की धुलाई कर सकें, मन-से-मन का बोझ हटा सकें, मन की गंदगी हटा सकें तो हमें समझना चाहिए कि हम मन का स्नान कर पा रहे हैं। 'ध्यान' मन का स्नान है; जो ध्यान करते हैं; जो ध्यान करना जानते हैं; जो ध्यान में निमग्नता अनुभव करते हैं, वो मन का स्नान भी कर पाते हैं। उनका मन फिर तरोताजा हो जाता है, उनके मन में फिर उन्हें ताजगी व पुलकन अनुभव हो पाती है। सामान्य जीवन क्रम में हम मन की ताजगी, मन की प्रसन्नता एक कारण से अनुभव कर पाते हैं और वो कारण है—अच्छी नींद।

जिस दिन हम बड़ी गहराई से सोते हैं; बड़ी गहरी नींद में जाते हैं; सुषुप्ति अवस्था में जाते हैं; उस दिन जब नींद से उठते हैं तो मन बड़ा तरोताजा, मन बड़ा खुश-प्रसन्न महसूस करता है, लेकिन जो सही माने में ध्यान कर पाते हैं, वो किसी भी अवस्था में मन को प्रसन्न व तरोताजा बना लेते हैं। इस तरह 'ध्यान' मन को स्नान कराने; उसे प्रसन्न व तरोताजा करने की एक विधि है, जिसे हर कोई अपना सकता है और इससे अपने जीवन को सँवार सकता है। ❑

रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता-
मम्भो बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशः।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः॥

—नीतिशतक

अर्थात हे मित्र! एक क्षण के लिए मेरी बात सुनो। आकाश में बहुत से बादल होते हैं, किंतु सभी एक जैसे नहीं होते हैं। कुछ बादल वर्षा के द्वारा धरती को आर्द्र करते हैं तो कुछ व्यर्थ में गरजते हैं। हे मित्र! जिस-जिस बादल को देखते हो, उस-उसके सामने स्वाति की बूँद के लिए व्यर्थ दीन वचन मत बोलो।

जीव-जंतुओं के सोने का अद्भुत संसार

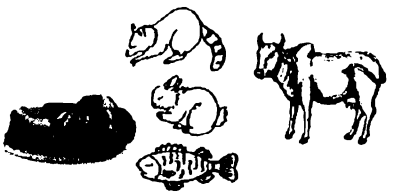

दुनिया में हर प्राणी की सोने की अपनी एक विशिष्ट आदत होती है। मनुष्य औसतन 6 से 8 घंटे सोता है; जबकि कुछ अपवाद रूप में 3-4 घंटे से भी काम चला लेते हैं, ऐसे ही कुछ लोग 10-12 घंटे की नींद के बाद ही तरोताजा अनुभव कर पाते हैं। इसी तरह जीव-जंतुओं के शयन का भी अद्भुत संसार है, जिनमें कुछ दिन भर में कुछ मिनट सोते हैं तो कुछ के लिए आधा दिन भी सोने के लिए कम पड़ जाता है। कुछ खड़े-खड़े सोते देखे जाते हैं, तो कुछ उड़ते हुए नींद पूरी करते हैं। प्रस्तुत हैं ऐसे ही जीव-जंतु जगत के नींद के कुछ रोचक एवं रोमांचक किस्से।

कोआला, सोने का चैंपियन माना जाता है, यह किसी कोटर में या पेड़ के तने के सहारे 18 से 22 घंटे सोते हुए अपना एक पूरा दिन बिता लेता है। ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी और दक्षिण-पश्चिम क्षेत्रों में पाया जाने वाला यह जीव यूकेलिप्टस के जंगलों में रहता है तथा इसी की पत्तियाँ इसका मुख्य आहार रहती हैं। प्रतिदिन कोआला एक पौंड पत्तियों का सेवन कर सकता है, जो प्रकृति में विषैली होती हैं, जिनको पचाने के लिए कोआला के पाचनतंत्र को भारी मशक्कत करनी पड़ती है। इससे कोआला को सीमित ही पोषण मिल पाता है, जिसमें ऊर्जा भी स्वल्प ही रहती है। यही कारण है कि कोआला अधिक सोते हैं।

वॉलरस, जैसे भारी भरकम और थुलथुल समुद्री जीव एक ही समय में सो भी सकते हैं और तैर भी सकते हैं। ये कहीं भी सो सकते हैं। ये पाँच मिनट तक अपना श्वास रोक सकते हैं और पानी के नीचे झपकी ले सकते हैं या किनारे पर 19 घंटे तक सोते हुए पड़े रह सकते हैं। साथ ही वॉलरस को 84 घंटे तक एक साथ तैरते देखा गया है। पानी पर सोने के लिए वॉलरस शरीर की ग्रसनी थैली को फैला सकते हैं, जो एक तरह की जैविक लाइफ जैकेट का काम करती है और इस भारी-भरकम जीव को तैरती अवस्था में रख सकती है। ये प्राय: झुंडों में रहते हैं और एकदूसरे से सटकर सोते हैं।

स्लॉथ को सोने का उस्ताद माना जाता है और यह अन्य पशुओं से अधिक सोता है। यह 10-15 घंटे तक सोता है। शिकारियों से बचने के लिए इसे प्राय: पेड़ों पर सोते देखा जाता है और कई बार तो इसे टहनियों से लटककर सोते देखा जाता है। भालू के सोने का तरीका सामान्य होता है, लेकिन सरदियों में जब भालू गहरी शीतनिद्रा में जाते हैं तो इनके दिल की धड़कन धीमी हो जाती है। ये खाना-पीना, पेशाब व मल त्यागना या कसरत करना छोड़ देते हैं।

गर्भवती मादा भालू का सोने का तौर-तरीका थोड़ा बदल जाता है। इस दौरान बच्चों को जन्म देने के लिए वह जागती है और फिर इसके नवजात शिशु अगले कुछ माह तक आंशिक रूप से सो रही अपनी माँ के साथ रहते हैं और जब वह नींद से बाहर निकलती है तो वह इन्हें बाहर की दुनिया में घुमाने ले जाती है।

मेंढ़क भी सरदियों में शीतनिद्रा में जाते हैं, लेकिन इनके शरीर में एक तरह की एंटीफ्रीज विशेषता होती है, जिसके कारण इनके बाहरी अंग-अवयव सरदी में जम जाने के बावजूद, त्वचा के नीचे ग्लूकोज की अधिक मात्रा के कारण इनके आंतरिक अंग-अवयवों को जमने से रोकते हैं। आंशिक रूप से जमा हुआ मेंढ़क साँस लेना भी बंद कर देता है, लेकिन जैसे ही वसंत का मौसम आता है, तापमान बढ़ना शुरू हो जाता है, तो उसका शरीर अपना कार्य करना शुरू कर देता है तथा तब उसका जीवन वापस अपनी लय में आ जाता है।

चमगादड़ दिन में 19 घंटे तक सोते हैं। ये पूरे दिन उलटे लटके रहते हैं, जहाँ से इन्हें कमजोर पंखों के कारण उड़ान भरने में आसानी रहती है। इसी तरह बिल्ली सोते हुए 14-15 घंटे तक बिताती है। यह प्राय: दिन में सोती है और रात को शिकार करती है। ऊदबिलाव जैसे उभयचर जीव पानी में पीठ के बल पर जोड़ों में या समूह में विश्राम करते हैं एवं नींद लेते हैं। ये प्राय: सोते समय एकदूसरे के हाथ पकड़े रहते हैं, जिससे कि वे रात को सोते समय कहीं दूर न बह जाएँ। सोते समय मादा ऊदबिलाव बच्चे को अपनी

गोद में लिए रहती है। दिन में इसकी नींद लगभग 11 घंटे की होती है।

अफ्रीका में पाए जाने वाले नेवले जैसे स्तनपायी जीव मीयरकेट, जटिल सुरंगों से बने बिलों में रात को बाकायदा स्लीपिंग चैंबर में सोते हैं। इनके समूह में 40 तक मीयरकैट हो सकते हैं, जो एक तरह से गिरोह बनाकर रहते हैं, जिसमें एक मुख्य नर और अनेक मादा मीयरकैट होते हैं। ये झुंड में ढेर बनाकर सोते हैं, ताकि इन्हें एकदूसरे से गरमी मिलती रहे। मुखिया ढेर के सबसे नीचे रहता है, जिससे उसकी सुरक्षा सुनिश्चित रहे। पिल्ले, गिलहरियाँ, चमगादड़ और कुछ अन्य जीव भी इसी तरह गरमाहट के लिए सटकर सोते देखे जाते हैं।

डॉल्फिन जैसे प्यारे से दोस्ताना जीव का सोने का तरीका भी अद्‌भुत होता है। ये नींद की बहुत गहरी लॉगिंग अवस्था में भी जा सकती हैं, जिसमें ये निश्चेष्ट होकर लट्ठे की भाँति पानी की सतह पर तैरती दिख सकती हैं। सोते समय ये मस्तिष्क का आधा हिस्सा उपयोग करती हैं, जिससे उनकी एक आँख खुली रहती है, ताकि किलर व्हेल, शार्क जैसे अपने खतरनाक शत्रु-शिकारियों पर वह अपनी नजर बनाए रख सकें। दो घंटे बाद डॉल्फिन मस्तिष्क के इस हिस्से को विश्राम देकर दूसरे हिस्से को सक्रिय करती हैं। सोने का यह तरीका चमगादड़, पोरपोइस, गोह, सील, बत्तख तथा कुछ अन्य पक्षियों में भी पाया जाता है।

जिराफ देखने में एक खासा ऊँचा और भारी-भरकम जीव लगता है, लेकिन यह दिनभर में मुश्किल से दो घंटे सो पाता है। इसका कारण इस पर सतत मांसाहारी जानवरों का मँडराता खतरा है; क्योंकि इनके लिए बैठे हुए जिराफ का शिकार करना आसान रहता है। इसलिए जिराफ अधिकांशत: अपने पैरों पर खड़े-खड़े 15-20 मिनट की पावर नैप लेकर अपना काम चला लेते हैं।

इसी तरह अंटार्कटिका के पैंग्विन अपनी ऊर्जा को संरक्षित रखने के लिए लघु पावर नैप से काम चलाते हैं। ये जमाने वाले आर्कटिक तापमान में बड़ा समूह बनाकर आपस में सटकर सोते हैं, जिससे कि शरीर की गरमी बनी रहे।

अलबाट्रोस दिन में मात्र 42 मिनट सोता है। यह एक ऐसा समुद्री पक्षी है, जिसका अधिकांश जीवन शिकार की तलाश में उड़ते हुए बीतता है। इस व्यस्त दिनचर्या के कारण इसको सोने का अधिक समय नहीं मिल पाता, जिस कारण माना जाता है कि यह हवा में ही प्राय: झपकी ले लेता है। वैज्ञानिक यह भी खोज कर चुके हैं कि कई पक्षी वास्तव में उड़ते हुए ही नींद पूरी करते हैं। पाया गया है कि लंबी परिव्रज्या (माइग्रेशन) के दौरान पक्षी कुछ सेकेण्ड की सैकड़ों पावर नैप ले लेते हैं।

गाय दिन में लगभग 4 घंटे सोती है। अध्ययन से रोचक जानकारी मिली है कि गाय जीवन का आधे से अधिक समय लेटे हुए बिताती है, वह दिन में लगभग 14 घंटे लेटी रहती है। इसका एक अल्प-सा समय ही सोते हुए बीतता है और यह कभी-कभी खड़े होकर भी झपकी ले लेती है। बकरी रात को पाँच घंटे की नींद लेती है और दिन में भी चरने तथा इसको हजम करने के लिए जुगाली करने के बीच झपकी लेती रहती है।

घोड़े, जेबरे और हाथी, पैरों पर खड़े-खड़े सोने वाले प्राणी हैं, साथ ही वे चौकन्ने भी रहते हैं। इनको खड़े होने की ऐसी कला आती है, जिसमें मांसपेशियों की अधिक भूमिका नहीं रहती, लेकिन तब भी घोड़े को बीच-बीच में लेटने की भी जरूरत पड़ती है; क्योंकि खड़े-खड़े इसकी नींद गहरी अवस्था तक नहीं पहुँच पाती। मकड़ी की पुतलियाँ नहीं होतीं, इसलिए ये अन्य पशुओं की तरह नहीं सो पातीं। जब वे अपने पैरों को नीचे की ओर समेटे होती हैं तो वे कैलोरीज को बचा रही होती हैं तथा प्राय: सो रही होती हैं। ये रात को व्यस्त रहती हैं, इसलिए इनके सोने के तौर-तरीके भिन्नता लिए होते हैं।

चिंपाजी पत्तियों, टहनियों और अन्य प्राकृतिक संसाधनों से अपना बिस्तर बनाने के लिए जाने जाते हैं और औसतन नौ घंटे की नींद से अपना काम चलाते देखे जाते हैं। इसी तरह औरंगुटान, गुरिल्ला जैसे प्राणी मानव की तरह सिमटकर सोना पसंद करते हैं। ये भी बिस्तर बनाते हैं या शिकारियों की दखलंदाजी से दूर अपना ठिकाना खोजते हैं। अपनी सुरक्षा सुनिश्चित कर लेने पर ये देर तक सो पाते हैं।

जीव-जंतुओं के सोने के संसार को देखकर लगता है कि हम मानव कितने सौभाग्यशाली हैं, जो निर्बाध रूप से शयन कर सकते हैं। सरदी या गरमी में अपनी आवश्यकता के अनुकूल गरम या ठंडक संसाधनों को जुटाकर आरामदायक नींद को संभव बना सकते हैं। इसलिए सदा शांत नींद हमें लेनी चाहिए। ❑

सादा जीवन उच्च विचार

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव का कथन है—सादा जीवन-उच्च विचार। सादा जीवन यानी सादगी से भरा हुआ जीवन। एक ऐसा जीवन जिसमें आवश्यकताएँ कम हों, जिसमें महत्त्वाकांक्षाएँ कम हों, जिसमें इच्छाएँ कम हों; और जो हमारे पास हो बस, उसी में संतोष का भाव हो। सादा जीवन-उच्च विचार का उपदेश देने वाले ऋषियुग्म ने अपना पूरा जीवन सादगी के साथ जिया और अपने उच्च विचारों को साहित्य में संकलित किया, ताकि अन्य लोग भी सादा जीवन व उच्च विचार के महत्त्व को समझ सकें और इसे अपने जीवन में आत्मसात् कर सकें।

व्यक्ति की इच्छाएँ जब बहुत बढ़ जाती हैं तो उन्हें पूरा करने के लिए वह उन्हीं के अनुरूप भाग-दौड़ करता है। चिंता करते हुए तनाव में रहता है, लेकिन जब उसकी इच्छाएँ सिमट जाती हैं तो उन्हीं के अनुरूप उसकी चिंता व तनाव भी कम हो जाते हैं। दुनिया में कुछ ऐसे लोग होते हैं, जिन्हें चाहे जितना मिल जाए वो उससे कभी भी संतुष्ट नहीं होते और इस तरह अपनी इच्छाओं को बढ़ाने के साथ अपनी असंतुष्टि का दायरा भी वो बढ़ाते ही रहते हैं। ठीक इसके विपरीत दुनिया में कुछ ऐसे भी लोग मौजूद हैं, जिन्हें किसी वस्तु की कोई अनावश्यक चाहत नहीं होती है। उनके पास जो है, वे उसी में संतुष्ट एवं प्रसन्न रहते हैं।

हमारे देश में महापुरुष इसी श्रेणी में आते हैं जो अपने जीवन से संतुष्ट होते हैं। उनके पास साधन भले ही बहुत कम हों, किंतु ज्ञान की अतुलनीय संपदा पर्याप्त मात्रा में होती है। उनमें विवेक-वैराग्य होता है, जो उन्हें इस संसार में भटकने नहीं देता, बल्कि उन्हें उनके जीवनलक्ष्य की ओर ले जाता है। जीवन में सादगी का होना अच्छी बात है, किंतु यह सादगी तभी शोभायमान होती है, तभी हमें संतुष्टि व प्रसन्नता प्रदान करती है, जब उसके साथ ज्ञान, विवेक व वैराग्य जैसे गुण होते हैं; अन्यथा यह सादगी मात्र थोड़े समय के लिए ओढ़ी हुई होती है।

जब कोई व्यक्ति अपने घर से कार्यालय जाने के लिए तैयार होता है तो वह भली प्रकार तैयार होकर जाता है। कार्यालय की पोशाक में भले ही वह आरामदायक महसूस न करता हो, किंतु फिर भी वह उसे पहनकर जाता है, पर जब वह सोने जाता है तो शरीर को आराम व सुकून देने वाले ढीले-ढाले कपड़ों का चयन करता है, जिसमें उसे आराम का अनुभव होता हो। यदि रात में सोने के लिए भी वह सुंदर दिखने वाली सजी-धजी पोशाक का चयन करे तो ऐसी पोशाक दिखने में दूसरों को और उसे स्वयं को भले ही अच्छी एवं आकर्षक लग सकती हो, लेकिन शरीर को वह सुकून व आराम नहीं दे सकेगी।

सुंदर व कीमती दिखने वाली पोशाक की तरह ही हमने अपनी जीवनशैली इस कदर ढाल ली है, जो दूर से दिखने में बहुत आकर्षक है व हमारे सभ्य होने को दरसाती है, लेकिन उस जीवनशैली में सुकून, शांति व विश्रांति की कमी है, जो व्यक्ति को परिणामत: असंतुष्टि देते हैं। कोविड-19 के दौर में जब देश में लॉकडाउन हुआ तो उस दौरान बहुत से लोग यह सोचकर घबरा गए कि उन्हें अपने घर में कैद होकर रहना होगा; लोगों से मिलना-जुलना बंद करना होगा; अपनी आवश्यकताओं को सीमित करना होगा व साथ ही कहीं बाहर या ऑफिस जाकर काम भी नहीं करना हो सकेगा।

कुछ भी काम न करने के कारण बहुत से लोग अपने घरों में बोर हुए तो बहुत से लोगों ने अपने घर में ही अपने लिए नए कार्य ढूँढ़ लिए और जिंदगी को एक नए ढंग से जीना आरंभ किया। गृहणियाँ जो प्राय: अपने घरों का कार्य नित्य करती हैं उनके लिए लॉकडाउन होने का कुछ ज्यादा असर नहीं हुआ, बल्कि उनके लिए तो कार्य और अधिक बढ़ गया। मनमरजी का कार्य न कर पाने का सबसे अधिक असर युवाओं पर, उसके बाद बच्चों पर और अंतत: बुजुर्गों पर पड़ा; क्योंकि लॉकडाउन ने लोगों की आवश्यकताओं पर एक तरह से ताला लगा दिया था।

इस दौरान दुकानों के बंद होने के कारण वे लोग कपड़े व अन्य सामान की खरीदारी नहीं कर सकते थे और होटल आदि के बंद होने के कारण स्वादिष्ट व्यंजनों का

आनंद भी नहीं ले सकते थे। पूरे समय बाजार के न खुले होने के कारण जब जिस चीज की आवश्यकता हो उसे वे खरीद भी नहीं सकते थे। घर में ही अपने सीमित उपलब्ध साधनों से जो पकाया जाए, उसी को ग्रहण कर सकते थे। इस तरह कोविड—19 ने लोगों को थोड़े समय के लिए ही सही सादगी व संतुष्टि का जीवन दिया। भले ही इस दौरान लोग अपनी जीवनशैली से असंतुष्ट रहे हों, लेकिन यह बात तो सबको माननी पड़ेगी कि इसी सादगी ने उन्हें इस दौरान स्वस्थ बनाए रखा।

सादगी का अर्थ केवल खान-पान या सरल जीवनशैली नहीं है, बल्कि यह वास्तव में एक सोच है; क्योंकि इस सोच के कारण ही जीवन को देखने का हमारा नजरिया बदल जाता है। यदि यह नजरिया सीधा-सादा होगा तो फिर ज्यादा झूठ बोलने की जरूरत नहीं होगी, झगड़ा नहीं होगा व कुछ चुराने-छिपाने की जरूरत नहीं होगी; फिर जीवन में दूसरों से आगे निकलने या महत्त्वाकांक्षावश कुछ पा लेने की होड़ में शामिल होने की जरूरत भी महसूस नहीं होगी।

इस संसार में बाहरी आकर्षण का प्रभाव इतना अधिक है कि इसके कारण लोग सादगी को जीवन में उतार ही नहीं पाते, इसलिए धीरे-धीरे लोगों ने सादगी को ही भुला दिया है और यही कारण है कि हम प्रकृति के साथ सहज सामंजस्य को भी भूल गए हैं। हमारे बच्चे भी वही शिक्षा पाते हैं, जो आज के बाजार के दबाव की उपज है। बचपन में जब वे पहली बार झूठ बोलते हैं और उसे अनदेखा किया जाता है तो धीरे-धीरे झूठ बोलना उनकी आदत में शामिल हो जाता है।

इस आदत के कारण बच्चे के मौलिक गुण खोने लगते हैं और वह बनावटी होता जाता है और अपने मूल व्यक्तित्व पर झूठ का आवरण डालता चला जाता है। तब वह अपने अंत:करण की नहीं सुनता। ऐसे बच्चे बड़े होकर ऐसा समाज बनाते हैं, जो सरल नहीं होता, बल्कि जटिल होता है तथा मनोग्रंथियों से युक्त होता है। पिछली सदी के सत्तर के दशक में अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अब्राहम हेराल्ड मैसलो ने 'मैसलो पिरामिड' का सिद्धांत दिया था; जिसमें उन्होंने व्यक्ति की मूलभूत जरूरतों का क्रम इस तरह बताया था—1. शारीरिक आवश्यकता, 2. सुरक्षा की आवश्यकता, 3. स्नेह की आवश्यकता, 4. सम्मान की आवश्यकता, 5. आत्मसिद्धि की आवश्यकता। इस आधार पर उन्होंने यह स्पष्ट किया था कि इन मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के क्रम में व्यक्ति का जीवन जटिलता की तरफ बढ़ता है, जैसे—सुरक्षा की आवश्यकता के तहत नौकरी की सुरक्षा, आमदनी की चिंता, सम्मान खोने की चिंता आदि व्यक्ति को होती हैं। ये वे आवश्यकताएँ हैं, जो व्यक्ति को चालाकी व झूठ बोलने के लिए प्रेरित करती हैं, लेकिन इसके साथ आत्मबोध की जरूरत भी व्यक्ति को महसूस होती है; क्योंकि इसके द्वारा ही इस मार्ग से उसे शांति का एहसास होता है।

हमारे समाज में कुछ ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभा और समझदारी के बल पर जीवन की जटिलताओं के बीच भी शांति व सादगी का रास्ता चुन लिया था। उदाहरण के लिए—बाल गंगाधर तिलक। इनका जीवन बहुत सादगीपूर्ण था, लेकिन इनका कार्य कठिन था। वे अखबार चलाते थे, जिसमें वे लेखन करते थे। अँगरेज सरकार का उन पर बहुत दबाव था, किंतु इस दबाव के बावजूद उन्होंने कभी सत्य के साथ समझौता नहीं किया और कड़े विरोध के बावजूद ऐसे लेख लिखे, जो देशवासियों के मन में क्रांति की लहर जगा सकें तथा देशप्रेम का उफान ला सकें।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी फ्रांस के मनोवैज्ञानिक व दर्शनशास्त्री एडवर्ड चार्ल्स का कहना था कि जटिल होने के बाद आपके प्रयास भी आपको विचलित कर देंगे। वहीं यदि आप सरल रह सकेंगे तो इसके कारण आपका प्रयास भी केंद्रित रहेगा यानी आप एकाग्र रह सकेंगे। यह सोचने की बात है कि सबसे आगे रहने की दौड़ और खुद पर दबाव डालते रहने की आदत ने हमारे जीवन को आसान बनाया है या जटिल। निश्चित रूप से जटिल बनाया है और यही कारण है कि आज हमारे समाज की सरलता व सादगी कहीं विलुप्त-सी हो गई हैं और जटिलता व तेज चकाचौंध की यहाँ भरमार है।

आज समाज में सच्चे लोग ढूँढ़ना मुश्किल है और जटिल मनोग्रंथियों से युक्त व्यक्तियों की आज बहुतायत है। जीवन वास्तव में इतना जटिल नहीं है, जितना उसे बनाया गया है। हमें बस, उसे सरल बनाने का प्रयास करना है। इसके लिए यह जरूरी है कि हम उन अपेक्षाओं के पीछे न दौड़ें, जो मन की शांति हर लें। सरल रहें और खुद को भी पूरी तरह से स्वीकार करें। सादगीपूर्ण जीवन संभव है यदि

हम जीवन के नकारात्मक पहलुओं के बीच अपने विचारों को सकारात्मकता की ओर ले जाने का अभ्यास करें। कोविड-19 के इस दौर में जहाँ कई लोग इस वायरस से संक्रमित हुए हैं तो वहीं कई लोग कोविड-19 से संक्रमण की जंग को जीतकर भी आए हैं और उन सभी का यह कहना है कि सादगी भरी जीवनशैली ही कोविड-19 के संक्रमण से लड़ने और उसे जीतने हेतु एक प्रमुख हथियार है।

इस मुश्किल समय की मुख्य सीख यही है कि यदि हम अपने जीवन को सहज व सरल नहीं रख सकते तो हम अपनी जिंदगी के साथ न्याय नहीं कर सकते। अमेरिका में आज भी 12 जुलाई को सादगी दिवस मनाया जाता है। इस दिवस को सादगी के रूप में याद करने व याद दिलाने का श्रेय अमेरिका के मशहूर लेखक, कवि, पर्यावरणविद्, इतिहासकार व दर्शनशास्त्री—हेनरी डेविड थॉरो को जाता है। यह उनका जन्मदिन (12 जुलाई, 1817) है; क्योंकि उन्होंने दुनिया को सादगी के साथ सादा जीवन जीने का संदेश दिया और इसे सभी समस्याओं का हल बताया। उनका कहना है कि मैं बहुत कम इच्छाएँ रख सकता हूँ और यही मेरी सबसे बड़ी कुशलता है। वास्तव में लोगों की इच्छाएँ अनंत होती हैं और जो इन पर काबू पा लेता है, वही सादगी को अपना सकता है।

हेनरी डेविड थॉरो के अनुसार—इनसान को प्यार, पैसा और शोहरत से ज्यादा सत्य की जरूरत होती है। यही उसे हर परिस्थिति में काम आता है। जीवन के प्रति मेरा सबसे बड़ा हुनर यह है कि मुझे बहुत कुछ चाहिए, पर कम मात्रा में। सभी तरह की सुविधाओं के सम्मान के साथ सबसे समझदार लोग ज्यादा सादा जीवन जीते हैं और कम-से-कम चीजों में काम चलाते हैं। सादा जीवन हमें जिंदगी में कई उपहार लाकर देता है। उनमें सबसे पहला उपहार स्वास्थ्य का है। जब हम सादा जीवन यानी सादगी को अपना लेते हैं तो हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता सेहत होती है, फिर हम सोच-समझकर ही आहार ग्रहण करते हैं और सेहतमंद होने की कोशिश करते हैं।

सादगी अपनाने पर व्यक्ति भविष्य की परवाह तो करता है, लेकिन अपने वर्तमान को भी भरपूर आनंद के साथ जीता है। उसके हर पल में खूबसूरती ढूँढ़ लेता है; क्योंकि फिर उसके पास अपने वर्तमान के साथ जीने का समय होता है। सादगी से भरा जीवन जीने वाले लोग अपनी जरूरतें नहीं बढ़ाते और वही खरीदते हैं, जिसकी उन्हें बहुत जरूरत होती है। ऐसे लोग सच्चाई के करीब होते हैं और अतिप्रतिक्रियावादी होने से भी बचते हैं। उनका निर्णय भी समझदारीपूर्ण होता है। सादा जीवन जीने वाले लोगों के रिश्ते भी गहरे और अर्थपूर्ण होते हैं। ये कर्त्तव्यों को पूरा करने पर केंद्रित होते हैं न कि किसी को प्रभावित करने के उद्देश्य पर।

ऐसे लोग प्रकृतिप्रेमी होते हैं और गैरजरूरी चीजों पर ध्यान नहीं देते। ऐसे लोग खुद का ख्याल रखते हैं। भौतिक वस्तुओं को पाने की चाहत में वे उलझे नहीं रहते और स्वयं पर महत्त्वाकांक्षाओं को हावी भी नहीं होने देते। इस तरह सादा जीवन हमें मानसिक शांति व स्वास्थ्य की अमूल्य संपदा देने के साथ-साथ हमारे मौलिक व्यक्तित्व को भी उजागर करता है; उसे निखारता है और यही कारण है कि साधना के दौरान साधक से सादा जीवन जीने के लिए कहा जाता है। ❑

असुर्या नाम ते लोकाऽ अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

—यजुर्वेद 40/3

अर्थात जो लोग आत्मा को पतन की ओर ले जाते हैं, वे जीते जी तो दुःख पाते ही हैं, साथ ही मरने के बाद भी केवल पशुओं आदि ऐसी भोग योनियों में जाते हैं, जहाँ मात्र अज्ञानरूपी अंधकार छाया रहता है।

चेतना की शिखर यात्रा – 221

विडंबना और तथ्य

विगत अंक में आपने पढ़ा कि शांतिकुंज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता और गायत्री तपोभूमि की स्थापना के समय पूज्य गुरुदेव से दीक्षाप्राप्त शिष्य बद्री प्रसाद पहाड़िया जी का मन तत्कालीन सुर्खियों में छाए महात्माओं के आध्यात्मिक चमत्कारों से प्रभावित था। प्रत्यक्ष मुलाकात के क्रम में पूज्य गुरुदेव ने उनका मन ताड़ लिया व उनकी दैनिक साधना के दौरान उन्हें इस सब की निस्सारता का अनुभव कराकर साधना के वास्तविक उद्देश्य से अवगत कराया। सन् 1976 से 1978 की इन्हीं विचित्र विडंबनाओं के दौर में अध्यात्म की यथार्थता को अपनी अनूठी शैली में जनसामान्य के गले उतारने वाले ओशो तेजी से उभरकर आ रहे थे। जिनके नजदीकी कार्यकर्त्ता स्वामी योगभारती उनके भावी प्रवचनों के लिए आवश्यक तथ्यों को जुटाने के उद्देश्य से पूना से अपनी यात्रा प्रारंभ कर अनेक आश्रमों से होते हुए हरिद्वार में पूज्यवर से वेद-उपनिषद् के गूढ़ रहस्यों की कुछ कुंजियाँ प्राप्त करने के निवेदन से मिले। पूज्य गुरुदेव ने उन्हें उनके कार्यों हेतु न केवल अपनी शुभकामनाएँ दीं, वरन अपने सर्वोपलब्ध साहित्य का परिचय देते हुए उनके साथ अपनी भविष्य की योजनाएँ भी साझा कीं। उन्हीं दिनों योग तथा कुंडलिनी साधना के संबंध में भी जोर-शोर मचा था। चारों ओर छाई इन भ्रांतियों को निर्मूल कर स्वयं पूज्य गुरुदेव ने अपनी सहज, सुगम शैली में आसनसिद्धि का मर्म लोगों को समझाया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

रामकृष्ण परमहंस का वह प्रसंग प्रसिद्ध है। यही प्रसंग भगवान बुद्ध के संबंध में भी कुछ-कुछ अंतर से प्रचलित है, लेकिन स्वामी रामकृष्ण परमहंस उस बोध प्रसंग के प्रत्यक्षदर्शी भी रहे हैं। कहते हैं कि किसी सिद्धयोगी ने वर्षों तक तप करने के बाद अपने शरीर को निर्भार करने की सिद्धि प्राप्त कर ली। वह हवा में उड़ने लगा था और नदी की बहती धारा पर पैर रखकर चलते हुए इस पार से उस पार भी चला जाता था। स्वामी रामकृष्ण परमहंस से भेंट हुई तो उसने अपनी सिद्धियों के बारे में बताया। सुनकर परमहंस ने कहा कि आप महान योगी हैं। आपने कठोर तप कर योग की महिमा का साक्षात्कार किया है। हम लोग माँ के सामान्य उपासक हैं। उनकी आराधना करके ही प्रसन्न रहते हैं। योगी ने फिर अपनी सिद्धियों का बखान किया और परमहंस को चुनौती-सी देते हुए कहा—"देखिए, मैं अपने योग वैभव को प्रमाणित करके भी दिखाता हूँ।" कहते हुए वह सामने ही बह रही गंगा में उतरा। धारा को छूकर कदम आगे बढ़ाया तो पानी ने उसके पदतल को स्पर्श किया और जमीन की तरह कठोर हो गया। उसने फिर दूसरा, तीसरा कदम बढ़ाया और सतह पर चलता हुआ-सा वह साधक गंगा के दूसरे किनारे चला गया। उस पार उतरकर वापस उसी तरह चलता हुआ इस पार आ गया। फिर परमहंस के सामने इठलाता हुआ खड़ा हो गया और कहने लगा—"यह है योग-साधना का चमत्कार।"

परमहंस ने योगी से कहा—"निश्चय ही यह आपकी योग-साधना का चमत्कार है। आपने इसके लिए लंबे समय तक साधना तो की, किंतु वह व्यर्थ हो गई।" सुनकर योगी चौंक उठा। वह परमहंस की ओर देखने लगा। परमहंस ने नदी की ओर इशारा किया। धारा पर एक नौका तैरती हुई आ रही थी। वे बोले—"उस नौका के स्वामी को दो पाई देकर आसानी से नदी पार की जा सकती है। इसके लिए दस-बारह साल तक साधना करने से क्या लाभ?"

गुरुदेव ने अपने प्रवासी जीवन में, एकांत साधना के समय और अज्ञातवास के दिनों में साधना-पथ के कई पथिकों को इस तरह के प्रसंगों द्वारा योगाभ्यासियों को सही मार्ग दिखाया था। उनका उल्लेख किए बिना उन्होंने परिजनों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में उक्त घटना का उल्लेख किया। उन्होंने साधकों को इस तरह की सिद्धियों से प्रभावित नहीं होते हुए अपने मार्ग पर बढ़ते रहने के लिए कहा। वे कहते कि चमत्कारी सिद्धियाँ तो मार्ग में चलते हुए मिल जाने वाले फूलों की तरह हैं। इन रंग-बिरंगी उपलब्धियों में ही उलझ जाओगे तो अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकोगे। फूल चुनने के लिए रुको मत। आगे बढ़ते रहो। मार्ग में फूलों से भी ज्यादा सुंदर दृश्य बिखरे पड़े हैं। जो लोग सिद्धियों और चमत्कारों का प्रलोभन दे रहे हैं, वे धर्ममार्ग का नहीं, मायाजाल का प्रचार कर रहे हैं। यह जाल-जंजाल ज्यादा दिन चलेगा नहीं।

कुंडलिनी भस्म हुई

दिल्ली के पास एक महिला योगी उन दिनों सामूहिक शक्तिपात का दावा कर रही थी। वह सभा-सत्संगों का आयोजन करती। उनमें बड़ी संख्या में लोग सम्मिलित होते और 'माता' के नाम से प्रसिद्ध वह योगिनी प्रवचन करती। प्रवचन के बाद साधकों को यौगिक व्यायाम के निर्देश देती। उस दौरान शिविर या सत्संग में बैठे साधक तरह-तरह की आवाजें करते। कुछ तो अपने स्थान से उठकर उछलने-कूदने लगते। कुछ सर्प की तरह फन उठाने का अभिनय करते हुए लहराने लगते। इन हलचलों को कुंडलिनी जागरण का चिह्न बताते हुए 'माता' साधकों को अभ्यास जारी रखने के लिए कहतीं। इन शिविरों में सम्मिलित हुए कुछ साधक शांतिकुंज के साधना शिविरों में भी आए। यहाँ ऐसा कोई चमत्कारी अनुभव नहीं हुआ तो निराश हुए।

1976 में दीपावली के आस-पास एक सत्र में भी कुंडलिनी साधना से चमत्कृत तीन-चार साधक आए। उन्होंने कहना शुरू किया कि यहाँ बताया जा रहा साधन अभ्यास तो सतही है। वास्तविक अनुभूति लेनी हो तो अमुक माता के पास चलना चाहिए। कुछ शिविरार्थियों से यह कहने के बाद वे अगले दिन प्रातःकालीन साधना और यज्ञ में सम्मिलित हुए। पता नहीं क्या हुआ कि एक साधक यज्ञ में आहुतियाँ देते हुए पसीना-पसीना होने लगा। उसके चेहरे पर भय और चिंता की रेखाएँ दिखाई देने लगीं। आहुतियाँ देने के बाद वह अपने स्थान से उठा तो कुंडलिनी सिद्ध योगिनी के पास से आए अपने साथियों को तलाशता हुआ चला गया। वह पहले से अब कुछ ज्यादा चिंतित और परेशान दिखाई दे रहा था। कुछ ही देर में उसके साथी मिल गए। उनसे कहने लगा कि यज्ञ करते हुए विचित्र अनुभूति हुई है। ऐसा लगा कि जो कुंडलिनी जाग्रत हुई थी, वह निकलकर यज्ञकुंड में उठ रही ज्वालाओं के संपर्क में आ गई और जलकर भस्म हो गई है और अब अपने भीतर रीतापन आ गया। लग रहा है कि आंतरिक वैभव नष्ट हो गया है।

उस साधक की अनुभूति सुनकर साथी-सहयोगी अवाक् रह गए। उनमें से कुछ और ने भी अपने बारे में इसी तरह की बातें कहीं। किसी ने ध्यान के समय तो किसी ने अखंड दीपक के दर्शन के समय अपनी योग संपदा को लुप्त होते हुए अनुभव किया था। उन साधकों में एक गणपति राव मुले महाराष्ट्र से आए थे और महीनों से दिल्ली के उस आश्रम में रहे थे। गणपति राव का अनुभव अपने साथी सहयोगियों से कहीं समृद्ध और विकसित था। उन्होंने कहा कि हम लोगों की आध्यात्मिक संपदा लुप्त नहीं हुई है, बल्कि हम जिस माया-मरीचिका में जी रहे थे, उसका भ्रम टूटा है।

गणपति राव ने इसके बाद संत ज्ञानेश्वर की लिखी 'गूढ़ार्थ दीपिका' के कुछ छंद सुनाए। उन छंदों में कुंडलिनी जागरण के बाद आंतरिक जगत में उठने वाले तूफानों का उल्लेख था। उनमें बताया गया था कि जाग्रत कुंडलिनी किस तरह साधक के कषाय-कल्मषों को चट कर जाती है, धो डालती है। यह प्रक्षालन इतना तीव्र और प्रखर होता है कि साधक को कई बार मृत्यु जैसा कष्ट होता है। यह प्रक्रिया अरसे तक चलती रहती है—कषाय-कल्मषों के पूरी तरह धुल जाने तक यह क्रम जारी रहता है। दोपहर तक वे साधक अपने अनुभवों और भय-चिंताओं के बारे में आपस में ही चर्चा करते रहे। इसके बाद उन्होंने प्रायश्चित, पश्चात्ताप करते हुए साधकों द्वारा लिखे जाने वाले पत्रों की शृंखला में एक आत्मनिवेदन लिखा। अपने दोष-दुर्भावों को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा कि वे साधना शिविर में आए साधकों को बहलाने-फुसलाने आए थे। उनका उद्देश्य था कि शिविर में आए कुछ लोगों को अपनी 'माता' के आश्रम में ले जाएँ और उनकी श्रद्धा-भावना को वहीं स्थिर कर दें। इसके लिए वे तरह-तरह के अपवाद फैला रहे थे।

उनके अपराधों को क्षमा कर दिया जाए। इस पत्र के बारे में गणपति राव मुले ने कोई पंद्रह-बीस वर्ष बाद बताया था और यह भी कि उन 'माता' का कार्य-व्यापार अब ठप हो गया है।

सिद्धियों और चमत्कारों के प्रति आकर्षण हमेशा ही रहा है। उनकी वास्तविकता जानने-समझने और समझाने के साथ इनके नाम पर बरगलाने-फुसलाने वालों की कलई खोलने वाला जागरूक बुद्धिजीवी वर्ग भी सक्रिय रहा है। आठवें दशक के उन मध्यवर्ती वर्षों में पता नहीं क्यों यह वर्ग निष्क्रिय-सा बैठा था। भस्म प्रकट करने, फूल की पंखड़ी या पत्ते से ऑपरेशन करने, कुंडलिनी जगाने और यौन उत्तेजना को मोक्ष का मार्ग बताने से लेकर शक्तिपात, दिव्य दर्शन, संकल्प सिद्धि आदि दावा करने वालों की भी भरमार-सी होने लगी थी। महाराष्ट्र के एक संत ने लोगों को पिछले जन्म की यात्रा कराने का आकर्षण दिया, इसके लिए जैन धर्म में महावीर की साधना विधि के प्रसिद्ध पक्ष 'जाति स्मरण' का प्रयोग किया गया। वे महात्मा जैन परंपरा के ही अनुयायी थे। इस पद और विधि का उपयोग करते हुए उन संत के मन में साधकों के लिए मंगल का भाव ही रहा होगा। लेकिन जाति स्मरण के इस प्रयोग को उनके कुछ अनुयायियों ने ठगी का धंधा ही बना लिया। सम्मोहन या शामक दवाओं के प्रयोग द्वारा साधक को गहरी नींद में सुलाकर उस पर ऐसी बातें थोपी जातीं कि प्रयोग से बाहर आने के बाद उसका वर्तमान जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता। जाति स्मरण के नाम पर लोगों की मनोचिकित्सा और आत्मिक उत्कर्ष के संगत-असंगत प्रयोग किए जाने लगे। उन दिनों इस प्रयोग विधि के दुरुपयोग की बहुतेरी घटनाएँ सामने आ रही थीं। कुछ घटनाएँ तो अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं के पन्ने पर भी बिखरीं। इनमें मुंबई के एक संपन्न उद्योगपति परिवार की गृहिणी का मामला काफी चर्चित हुआ। साइकिल उद्योग से जुड़े इस परिवार की रंजना राजन का जीवन सुख-शांति से बीत रहा था। पैंतीस वर्ष की यह गृहिणी दो होनहार बच्चों की माँ थी, पति शिष्ट-शालीन और अपने कारोबार में स्थापित थे। घर में सास और एक अविवाहित ननद थी। छोटा-सा खुशहाल परिवार और एकदूसरे के प्रति समर्पित निष्ठावान राजन परिवार को मित्र, परिचित और सगे संबंधी आदर्श कहते थे। (क्रमशः)

छोटी-सी गौरैया और बड़े गिद्ध में प्रतियोगिता तय हुई। निश्चय हुआ कि जो सबसे ऊँचे तक पहुँचेगा, वो जीतेगा। गौरैया फुर्र-फुर्र करती हुई ऊपर उठने लगी तो उसे दो कीड़े दिखाई पड़े, जो गिरते हुए नीचे आ रहे थे। उसने उन दोनों को भी साथ ले लिया और धीरे-धीरे ऊपर जाने लगी। इतनी देर में गिद्ध बहुत ऊँचा जा चुका था, पर तभी उसे सड़ी लाश दिखाई पड़ी और वह प्रतियोगिता भूलकर मांस खाने जा बैठा। गौरैया प्रतियोगिता जीत गई। दूर से यह घटना देखते एक संत बोले—

ऊँचे उठे फिर ना गिरे, यही मनुज को कर्म।
औरन ले ऊपर उठे, इससे बड़ो न धर्म॥

सत्य यही है कि ऊँचाई तक जाकर पतन होने के पीछे मनुष्य के कुकर्म ही जिम्मेदार होते हैं और जो शांति से धर्मपथ पर चलते रहते हैं, वे ही ऊँचाइयों को छू पाने में सफल होते हैं।

प्रकृति की शक्तिधाराएँ हैं देवता

प्रकृति में अनेक शक्तिधाराएँ हैं। इन्हीं शक्तिधाराओं को शास्त्र देवता कहते हैं। भारतीय परंपरा में अनेक देवता हैं, इसीलिए इसे बहुदेववादी कहा जाता है। देवता आखिरकार हैं क्या? क्या वे अंध आस्था हैं? क्या वे पुरोहितों, सामंतों द्वारा गढ़े गए आस्था के प्रतीक हैं? या देव प्रतीकों के पीछे भी कोई दार्शनिक प्रतीति है? विश्व के प्राचीनतम ज्ञानकोश ऋग्वेद में देवता के लिए देव शब्द का प्रयोग हुआ है। वैदिककाल के देवताओं को देव कहा गया है। वैदिक समाज में देव का अर्थ प्रकाशमान है; क्योंकि देव मनुष्यों को प्रकाश देते हैं। **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने की प्रार्थना देवों से ही की गई है।

भारतीय संस्कृति और ऋत (रीति) का गठन सतत तर्कदर्शन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और जिज्ञासा से हुआ। यहाँ कोई उद्घोषणा नहीं है। ऋग्वेद में एक जगह देवताओं की संख्या 33 बताई गई तो दूसरी जगह 33 करोड़ बताई गई है। देवता प्रकृति की प्रकाशमान शक्तियाँ हैं। भारत की प्रज्ञा ने प्रकृति की शक्तियों का विनम्र अध्ययन किया, विश्लेषण किया। ऋषियों ने जहाँ-जहाँ ऊर्जा देखी, वहाँ-वहाँ 'देव' की अनुभूति भी पाई। अँगरेजी का शब्द है 'डिवाइन'। यह दिव्य का ही रूपांतरण प्रतीत होता है। 'डिव' का अर्थ दिव्य है, इसी से डिवाइन और डिविनिटी—परमेश्वर और पवित्रता शब्द निकले हैं। डेविल इसका उलटा है। भारत में देवता के उलट कोई दूसरा शब्द नहीं है।

ऋग्वेद में वर्णित देवतंत्र ऋग्वेद के जमाने का देवतंत्र नहीं है। देवता पुराने हैं, ऋग्वेद के ऋषि—परंपरा के अनुसार उनकी स्तुतियाँ करते हैं, लेकिन दार्शनिक विकास के कारण उनका रूप व्यापक और विभु बनाते हैं। ऋग्वेद के ऋषि प्राचीन देवता के सीमित रूप-आकार को असीम तक ले जाते हैं।

देखने और दर्शन करने में बारीक अंतर है। हम वस्तु, व्यक्ति या दृश्य देखते हैं, देखने में आँख एक उपकरण बनती है। संस्कृत में इसके लिए प्रत्यक्ष (आँखों के सामने) शब्द का इस्तेमाल हुआ है, लेकिन दर्शन सिर्फ देखना ही नहीं है, इसीलिए लोकपरंपरा में मंदिर जाने को दर्शन करना कहते हैं। देखने में मूर्ति पत्थर है, लेकिन दर्शन में कुछ और है, देखने में संत-महात्मा भी मनुष्य हैं, लेकिन दर्शन में कुछ और हैं इसीलिए आस्थावादी, ईश्वर के भी दर्शन की इच्छा व्यक्त करते हैं। देवता भी काव्य, मंत्र और ऋचा में रूप आकार पाते हैं। ऋग्वेद के पहले के समाज में देवताओं का रूप-आकार सुनिश्चित है। ऐसे ही यूनानी समाज में भी देवताओं का बिंब रूप व्यवस्थित है। ऋग्वेद में यही बात इंद्र के लिए कही गई है और कठोपनिषद् में आगे फिर यही बात वायु के लिए।

प्रत्येक व्यक्ति का अलग रूप है, कीट, पतंगे, वनस्पति भी भिन्न-भिन्न रूप वाले हैं। ऋग्वेद में सूर्य को भी कई रूपों में देखा गया है। प्रत्येक रूप का अपना वैशिष्ट्य है। प्रत्येक रूप के अलग-अलग नाम हैं। रूप अस्थायी हैं। वे बदला करते हैं। सुबह के सूरज और दोपहर के सूरज में भिन्नता है। दोनों का नाम एक है— सूरज। मनुष्य बचपन में शिशु कहलाता है, रूप और वय के कारण, फिर तरुण, फिर वृद्ध। यूनानी दर्शनिक अरस्तू ने लिखा, 'कला प्रकृति की अनुकृति है।' साहित्य, काव्य, चित्रकला और नृत्य आदि का काम प्रकृति में विद्यमान रूपों की पुनरुक्ति है, लेकिन दर्शन की यात्रा में रूप का कोई अधिक महत्त्व नहीं होता।

दर्शन नाम और रूप के पीछे छिपी स्थायी सत्ता की जिज्ञासा है। सृष्टि का जन्म रहस्यपूर्ण है। उसका एक विकासवादी दृष्टिकोण है। आज का संसार एक सतत विकास का परिणाम है। डार्विन ने इस सिद्धांत को मजबूती दी। सिद्धांत आस्थावादियों का है, उनके अनुसार ईश्वर, परमात्मा, गॉड या अल्लाह ने सृष्टि बनाई। कुछ चिंतक जल को आदितत्त्व मानते हैं तो कुछ अग्नि को। हिराक्लिट्स अग्नि को ही आदितत्त्व मानते थे। बाद के यूनानी चिंतकों ने पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि ये 4 तत्त्व माने हैं। भारतीय चिंतन

उक्त चार तत्त्वों के साथ ही पाँचवें आकाश तत्त्व को भी मानता है।

भारतीय दर्शन चिंतन वैज्ञानिक चिंतन और सतत जिज्ञासा के जरिए विकसित हुआ है। भारतीय देवता कोरी आस्था का प्रतीक नहीं हैं, बल्कि प्रकृति की शक्तियाँ ही यहाँ देवता हैं। प्रकृति की विराट ऊर्जा ही सब तरफ नाना रूपों, शब्दों और ध्वनियों में खिलती है। रूप, रस, गंध, स्पर्श और श्रवण की शक्तियों के पीछे एक अनाम महाऊर्जा छिपी है। भारतीय दर्शन प्रकृति के विस्तार को कार्य कहता है और इस कार्य के पीछे छिपी ऊर्जा को कारण। यही वैज्ञानिक शब्दावली भी है। भारतीय दर्शन ने उसे कारण ब्रह्म कहा इसे अव्यक्त और सृष्टि को व्यक्त कहा गया।

सारे नाम-रूपों का कारण एक है। नाम अलग-अलग हैं, क्योंकि रूप अलग-अलग हैं। नामांतर की सारी कार्रवाई हजारों वर्ष से जारी विराट लोक समुदाय के बीच ही चली, लेकिन दर्शन—नामांतर के पीछे एक कारण सत्ता की अनुभूति की प्रतीति को देखता है। देवता प्रकृति की शक्तियाँ हैं। इनकी अभ्यर्थना एवं स्तुति के लिए नाम एवं रूप दिए गए हैं। अत: हमें देवताओं के इन रूपों को नमन करना चाहिए। ❑

महर्षि रमण से एक दिन कुछ भक्तों ने पूछा—''क्या उन्हें भगवान के दर्शन हो सकते हैं ?'' महर्षि ने उन्हें बताया कि यह संभव है, दर्शन हो सकते हैं, परंतु उन्हें पहचानने वाली आँख चाहिए। कुछ क्षण रुककर उन्होंने कहा—''एक सप्ताह तक चलने वाले समारोह के अंतिम दिन भगवान आएँगे, उन्हें पहचानकर उनके दर्शन कर लेना।'' भक्तों ने उत्साहपूर्वक समारोह का प्रारंभ किया। प्रतिदिन संकीर्तन होता। महर्षि रमण भी समय-समय पर उसमें जाकर बैठ जाते, अंतिम दिन भंडारे का आयोजन था। भोग के लिए अनेक व्यंजन बनाए गए थे। मंदिर के सामने पेड़ के नीचे मैले कपड़े पहने एक कोढ़ी खड़ा था। वह इस आशा में खड़ा था कि शायद उसे भी प्रसाद मिल जाए। एक व्यक्ति उसके लिए प्रसाद ले जाने लगा तो दूसरे ने उसे प्रताड़ित करते हुए कहा कि प्रसाद भक्तजनों के लिए है, किसी कंगाल-कोढ़ी के लिए नहीं और वह उस दोने को वापस ले आया।

महर्षि रमण यह दृश्य देख रहे थे। भंडारा समाप्त होने पर भक्तों ने महर्षि से पूछा—''आज अंतिम दिन है, पर भगवान तो नहीं आए।'' महर्षि ने शांत मुद्रा में उत्तर दिया—''मंदिर के बाहर जो कोढ़ी खड़ा था, वही तो भगवान थे, तुमने उन्हें पहचाना नहीं। भंडारे का प्रसाद बाँटते समय भी तुम्हें इनसानों में अंतर दृष्टिगत होता है।'' यह सुनकर सभी शर्मिंदा हो गए।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 142

शिक्षा-समस्याओं का निवारण

भारतीय जीवन में शिक्षा का स्थान जीवनमूल्यों की संवाहिका शक्ति के रूप में रहा है। यहाँ की शिक्षा के स्वरूप में शैक्षिक मूल्यों के साथ-साथ नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का भी समावेश किया गया है। भारतीय जीवन-दृष्टि में शिक्षा का अंतिम लक्ष्य आध्यात्मिक है। वेद, उपनिषद्, गीता आदि शास्त्रों में मनुष्य की मूल प्रकृति को आध्यात्मिक मानते हुए शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही बताया गया है।

इसी जीवन-दृष्टि के अनुरूप यहाँ की शिक्षण-पद्धतियाँ विकसित हुई हैं, परंतु वर्तमान में आधुनिकता के प्रभाव से भारतीय शिक्षण प्रणालियों की दिशा नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की तुलना में भोगवादी और भौतिकवादी मूल्यों की ओर ज्यादा है। जीवन की सर्वांगपूर्ण गति के लिए जिस जीवन-विद्या की आवश्यकता कही जाती है, वह आज की प्रचलित शिक्षापद्धति में नहीं दिखाई देती है।

हमारे देश में शिक्षा अब जीवन-विद्या के रूप में नहीं दिखाई पड़ती अपितु स्वयं एक बड़ी समस्या बनकर उभर रही है। जानकारियों का संग्रह और जीवन-निर्वाह के लक्ष्य तक सिमटी वर्तमान शिक्षा के एकांगीपन ने जीवन को मूल्यहीनता, चरित्रहीनता, भ्रष्टाचार, बेईमानी जैसी सैकड़ों समस्याओं से भर दिया है। शिक्षा जगत में उपजे इस संकट से उबरने के लिए आज सभी मनीषी, विचारक, विज्ञजन शिक्षा के साथ जीवनमूल्यों और जीवन-विद्या के समावेश को आवश्यक मानते हैं।

ऐसे में देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने 'शिक्षा के साथ विद्या' का समन्वय कर स्वयं एक उदाहरण पेश किया है और यहाँ की शिक्षण-प्रक्रिया एवं शोध अनुसंधान की गतिविधियों में हमारे प्राचीन एवं उच्चतम शिक्षामूल्यों को पुनर्जीवित करने का सशक्त प्रयास किया जा रहा है। इस संदर्भ में सन् 2017 में विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्र विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है।

यह शोधकार्य शोधार्थी प्रिज्मा झरे द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं प्रो. जितेंद्र तिवारी के निर्देशन में पूरा किया गया है। वर्तमान में शिक्षाजगत में व्याप्त समस्याओं के संदर्भ में यह अध्ययन विवेचनात्मक एवं सैद्धांतिक आधार पर सार्थक समाधान की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है। इस अध्ययन का विषय है—**'वर्तमान शिक्षा समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में समकालीन भारतीय चिंतन की शिक्षा-प्रणालियों का अध्ययन एवं मूल्यांकन।'** शोधार्थी ने अपने इस शोध अध्ययन को कुल छह अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया है।

प्रथम अध्याय है—विषय प्रवर्तन एवं शोध विषय का महत्त्व। इसके अंतर्गत भारतीय शिक्षा-प्रणाली के मुख्य तत्त्व, सिद्धांत और शिक्षण-प्रक्रियाओं का विस्तृत विवेचन करते हुए समकालीन भारतीय चिंतन में शिक्षा-प्रणालियों की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में आदर्शवादी शिक्षा दर्शन मौजूद है। शास्त्र, शस्त्र से लेकर योग, विज्ञान, ज्योतिष, धर्म, अध्यात्म आदि विषयों के माध्यम से गुरुकुलों में छात्र के व्यक्तित्व को समग्रता प्रदान करने तथा मनुष्य जीवन के सर्वोच्च आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के साधनों से अभ्यस्त कराने का कार्य भारतीय शिक्षा-प्रणाली की विशेषता थी।

छात्र की शिक्षा में लौकिक और अलौकिक, दोनों ज्ञान-विज्ञान की विधाएँ सम्मिलित थीं। आधुनिक भारतीय चिंतन में भी महापुरुषों ने अपनी इसी प्राचीन विरासत को केंद्र में रखकर युगानुरूप शैक्षणिक चिंतन एवं शिक्षा-प्रणालियाँ प्रस्तुत की हैं। इन शिक्षा-प्रणालियों में वे सभी आदर्श मौजूद हैं, जो वर्तमान शिक्षा-समस्याओं का समाधान भी करते हैं एवं शिक्षा के स्वरूप को सनातन मूल्यों से संयुक्त कर समग्रता एवं पूर्णता भी प्रदान करते हैं। इस अध्ययन में समकालीन भारतीय चिंतकों के अंतर्गत स्वामी विवेकानंद, रवींद्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविंद एवं

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के चिंतन को प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय है—स्वामी विवेकानंद की शिक्षा प्रणाली। इसके अंतर्गत स्वामी जी के चिंतन में शिक्षा के प्रमुख आयाम, शिक्षा के स्रोत, शिक्षणपद्धति एवं वर्तमान में स्वामी जी की शिक्षा-प्रणाली की प्रासंगिकता का विस्तृत विवेचन किया गया है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षा का प्रथम उद्देश्य मानव में अंतर्निहित पूर्णता को प्राप्त करना है। इसके साथ ही मनुष्य-को-मनुष्य बनाना अर्थात उसका चरित्र निर्माण करना भी शिक्षा का उद्देश्य है। स्वामी जी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की शिक्षा को आवश्यक कहते हैं। उनके अनुसार ऐसी शिक्षा हो, जो आत्मनिर्भर बनाए और अंतर्जगत का अनुसंधान करने में सहयोगी भी बने। स्वामी जी की शिक्षणपद्धति भारतीय मनोवैज्ञानिक सोच पर आधृत है। वे व्यावहारिक स्तर पर समाज, राष्ट्र और संस्कृति के संवाहक मूल्यों को सम्मिलित करते हैं एवं साथ ही तात्त्विक दृष्टि से अद्वैत और अध्यात्म की शिक्षा भी देते हैं।

स्वामी विवेकानंद शिक्षाप्राप्ति का वास्तविक स्रोत—शास्त्र, उपनिषद् एवं गुरु-शिष्य परंपरा को मानते हैं; जहाँ एकाग्रता, ध्यान, अंत:करण की शुद्धि, श्रद्धा एवं आत्मविश्वास का शिक्षण संभव होता है। शिक्षा के प्रमुख आयामों में स्वामी जी नारी शिक्षा, जनसमूह की शिक्षा और हमारी शिक्षा के सर्वोच्च शिखर वेदांत की आध्यात्मिक शिक्षा को आवश्यक बताते हैं। वे शिक्षा में तर्क, बुद्धि, हृदय और मन के साथ वैज्ञानिक चिंतन पर भी बल देते हैं। उनका शिक्षा दर्शन गीता व उपनिषदों पर आधृत है। उनकी शिक्षा-प्रणाली में आदर्शवाद, प्रयोजवाद, यथार्थवाद और मानवतावादी विचारों का अद्भुत समन्वय है। आज की नई एवं युवा पीढ़ियों के लिए स्वामी जी का उत्कृष्ट शिक्षा चिंतन उनके जीवन निर्माण को सार्थक और सकारात्मक दिशा प्रदान करता है।

तृतीय अध्याय है—गुरुदेव टैगोर के शिक्षा संबंधी प्रयोग। इस अध्याय में टैगोर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्रस्तुत करते हुए उनके शिक्षा-सिद्धांतों तथा शिक्षापद्धति की विस्तृत विवेचना की गई है। टैगोर के व्यक्तित्व में संत, कवि, साहित्यकार, अध्यात्मवेत्ता, सुधारक, शिक्षाविद्, राष्ट्रभक्त जैसे महान गुणों का समुच्चय समाहित है। उन्होंने पश्चिम बंगाल की धरती पर शांति-निकेतन की स्थापना कर शिक्षा के नए प्रयोग किए एवं स्वावलंबी शिक्षा को महत्त्व देते हुए विश्व भारती विश्वविद्यालय की स्थापना कर भारतीय शिक्षापद्धति को नूतन आयाम प्रदान किया। उन्होंने सत्य, सौंदर्य और शिव को शिक्षा का आदर्श माना एवं मानवता के प्रति प्रेम, स्नेह और सम्मान के लिए स्वानुशासन को आवश्यक बताया। उनके अनुसार शिक्षा वह है, जो मानव में पूर्ण मनुष्यता का विकास करती है। टैगोर शिक्षण-विधि को पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं रखते, वरन वे शिक्षण के लिए व्यवहारपरक और क्रियात्मक पाठ्यक्रम में विश्वास करते हैं। उनके अनुसार विद्यालयों का स्वरूप भी प्राचीन गुरुकुलों की भाँति शांत एवं ज्ञानार्जन के अनुकूल वातावरण से युक्त होना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय है—महर्षि अरविंद का शिक्षा दर्शन। इसके अंतर्गत श्रीअरविंद के अलौकिक व्यक्तित्व, शिक्षा दर्शन की पृष्ठभूमि, प्रमुख सिद्धांत एवं शिक्षा-प्रणाली की विस्तृत विवेचना की गई है। श्रीअरविंद महान दार्शनिक और उच्चकोटि के शिक्षाशास्त्री थे। उन्होंने मानव जाति को सर्वोच्च आध्यात्मिक विकास का मार्ग दिखाया था। उनके अनुसार शिक्षा का प्रमुख उपकरण अंत:करण है। अंत:करण के चार स्तर हैं—चित्त, मानस, बुद्धि तथा ज्ञान। शिक्षा-प्रक्रिया में बालक के इन चारों स्तरों का समुचित विकास संभव होना चाहिए।

श्रीअरविंद का चिंतन उपनिषद् एवं वेदांत से प्रेरित है, अत: उनका शिक्षा दर्शन भी आध्यात्मिक साधना, ब्रह्मचर्य और योग पर आधृत है। श्रीअरविंद की शिक्षा-प्रणाली में कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें हैं जिन्हें वर्तमान शिक्षा में आवश्यक माना जा सकता है। जैसे—विद्यार्थी की स्वतंत्रता, विद्यार्थी की प्रकृति के अनुसार शिक्षा, प्रेम और सहानुभूति का वातावरण करके सीखने का बल, मातृभाषा में शिक्षा, पारस्परिक सहयोग की भावना आदि। उनके अनुसार शिक्षक का कार्य केवल इतना है कि वह विद्यार्थी को सीखने में सहयोग करे एवं उसका पथ-प्रदर्शन करे।

पंचम अध्याय है—युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का शिक्षा चिंतन। इसके अंतर्गत आचार्य जी का व्यक्तित्व, उनके शैक्षिक विचार, शिक्षा का संप्रत्यय, शिक्षा का स्वरूप एवं शिक्षणपद्धति की विवेचना की गई है।

वर्तमान शिक्षा-समस्याओं के समाधान हेतु आचार्य जी ने केवल चिंतन ही नहीं दिया है अपितु अपने शिक्षा चिंतन को क्रियान्वित करने के लिए अनेकों सफल प्रयास भी किए हैं।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा नारी शिक्षा, बाल विकास एवं बाल संस्कारों की शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, जन शिक्षा, वेद-उपनिषद् आदि शास्त्रों की शिक्षा, विचार क्रांति की शिक्षा, मानवीय मूल्यों, धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा, विद्यालयों में स्वाध्याय मंडल, सत्संग मंडल, स्वावलंबन और शिक्षा के साथ विद्या समन्वय करने वाले अनेकों शैक्षणिक प्रकल्पों को गतिशील बनाया है। उनके अनुसार शिक्षा का मूल उद्देश्य मानव के व्यक्तित्व को समग्र बनाना और उसे महामानव के रूप में विकसित करना है।

पूज्य गुरुदेव के अनुसार शैक्षणिक पाठ्यक्रम ऐसा व्यावहारिक होना चाहिए, जिससे छात्रों में शालीनता, सज्जनता, श्रमशीलता, जिम्मेदारी, बहादुरी, ईमानदारी और समझदारी जैसी सत्प्रवृत्तियाँ विकसित हों एवं उनके व्यक्तित्व का विकास सही दिशा में अग्रसर हो। वे गुरुकुल-परंपरा को शिक्षा के लिए आदर्श मानते हैं एवं शिक्षा प्राप्त करने वाले आचार्य के व्यक्तित्व एवं चरित्र को शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। आचार्य जी ने नई पीढ़ी के लिए शिक्षा के साथ विद्या एवं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की शिक्षा के रूप में शिक्षा जगत को नया मार्ग दिखाया है, जिसे अपनाकर आज की शिक्षा-समस्याओं का संपूर्ण समाधान प्राप्त किया जा सकता है। आज देश-विदेश में उनके शैक्षिक चिंतन पर आधृत हजारों विद्यालय, संस्कारशालाएँ संचालित किए जा रहे हैं व उच्च शिक्षा के क्षेत्र में देव संस्कृति विश्वविद्यालय उनकी शिक्षा प्रकल्पनाओं को साकार रूप दे रहा है।

षष्ठ अध्याय है—'उपसंहार एवं निष्कर्ष।' इसके अंतर्गत सभी अध्यायों का सार-संक्षेप प्रस्तुत किया गया है एवं निष्कर्ष के अंतर्गत वर्तमान शिक्षा समस्याओं के समाधान हेतु समकालीन भारतीय चिंतकों के विचारों के महत्त्व एवं प्रासंगिकता को प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थी की मान्यता है कि समकालीन भारतीय चिंतन के मूल स्वर एवं वृत्ति भारतीय प्राचीन शिक्षा का ही नवोन्मेष हैं तथा इस चिंतन में युगानुरूप दृष्टि एवं शिक्षण-प्रणालियाँ वर्तमान शिक्षा-समस्याओं का समग्र समाधान करने में समर्थ हैं। ❑

शिष्य ने गुरु से प्रश्न पूछा—"गुरुदेव! शास्त्रों में उल्लेख आता है कि भगवान दुष्प्रवृत्तियों का अंत करने और सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन करने स्वयं धरती पर आते हैं। ऐसी स्थिति में सामान्य जनों की क्या भूमिका होती है।"

गुरुवर ने उत्तर दिया—"वत्स! परिवर्तन की घड़ियाँ असाधारण होती हैं। असुरता का अंत और देवत्व की स्थापना दिव्य सत्ता ही कर सकती है, पर कर्त्तव्य का समग्र भार उसे अकेले ही वहन नहीं करना होता। सेनापति अकेला नहीं लड़ता, सैनिक भी साथ चलते हैं। जैसे हाथ अकेला पुरुषार्थ नहीं करता, उँगलियाँ भी अपनी क्षमता के अनुरूप उसको सामर्थ्य प्रदान करती रहती हैं। समुद्र पर सेतु वानरों एवं गिलहरी के संयुक्त प्रयास से ही बन पाया था। जो भी व्यक्ति देवत्व के कार्य में अपनी आहुति देते हैं और सहयोग प्रदान करते हैं, वे सभी श्रेय-सौभाग्य के अधिकारी बनते हैं।"

जीवनशैली के विकार एवं इनका उपचार

व्यक्ति की जीवनशैली और उसके स्वास्थ्य के मध्य गहरा संबंध है। एक संयमित एवं अनुशासित जीवनशैली एक स्वस्थ और नीरोग जीवन का आधार बनती है तो वहीं जीवनशैली से जुड़ी अस्त-व्यस्तता एवं विकृति लंबे समय में बहुत भारी पड़ जाती है और जीवन नाना प्रकार के रोगों एवं विकारों से आक्रांत हो उठता है। जीवनशैली से उत्पन्न ऐसे रोगों को आज मृत्यु का एक बड़ा कारण माना जा रहा है।

इंडियन काउन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च (आईसीएमआर) ने जीवनशैली से संबंधी रोगों पर एक सर्वेक्षण किया, जिसकी सन् 2016 की रिपोर्ट इंडिया, हेल्थ ऑफ दि नेशन्स स्टेट के अनुसार जीवनशैली रोगों के कारण मृत्यु का प्रतिशत सन् 1990 में 37 % था, जो सन् 2016 में बढ़कर 61.8 % हो गया है अर्थात 61 % से अधिक लोगों की मृत्यु भारत में जीवनशैली से जुड़े रोगों के कारण हो रही है। इनमें मोटापा एक प्रमुख कारण है।

नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वे के अनुसार भारत विश्व में 15 करोड़ मोटापाग्रस्त नागरिकों के साथ दूसरे स्थान पर है, जिनकी संख्या प्रतिवर्ष 33 से 51 % की दर से बढ़ रही है। यदि व्यक्ति का बॉडी मास इन्डेक्स (बीएमआई) 25 से अधिक है, तो वह मोटापे की श्रेणी में आता है। अहितकर आहार, तनावपूर्ण जीवनशैली, शारीरिक श्रम की कमी इसके मुख्य कारण माने जाते हैं। यह शरीर में अन्य जीवनशैली के विकारों के पनपने का पहला चरण भी है।

मोटापा टाइप-2 मधुमेह का एक मुख्य कारण है। यह रोग प्रौढ़ लोगों में खान-पान व जीवनशैली की बिगड़ी आदतों के कारण पनपता है। अब तो बच्चे भी इसकी गिरफ्त में आ रहे हैं। हर 12वाँ भारतीय मधुमेह का रोगी है और भारत विश्व में ऐसे रोग वाला दूसरा सबसे बड़ा देश है।

मोटापा, मधुमेह और उच्च रक्तचाप से जुड़ा एक और रोग है—धमनिकाठिन्य (आर्टीरियोस्क्लिरोसिस), जो रक्तवाहिका धमनियों की दीवारों के मोटा होने व इनकी लचक कम होने के कारण होता है। इसके कारण रक्त संचार संबंधी विकार, छाती में दरद एवं दिल का दौरा पड़ते हैं।

हृदय रोग जीवनशैली से जुड़ा एक बड़ा रोग है। कोई भी असामान्यता, जिसके कारण हृदय की मांसपेशियाँ तथा रक्तवाहिका दीवारें प्रभावित होती हों—हृदय रोग की श्रेणी में आते हैं। भारत विश्व में 5 करोड़ रोगियों के साथ इसमें पहले स्थान पर है। इसके मुख्य कारण धूम्रपान, मधुमेह और शरीर में कोलेस्ट्रोल की अधिकता पाए गए हैं। भारत में कुल मिलाकर 26 % मौतें हृदय रोग के कारण होती हैं।

भारत में 10 करोड़ लोग उच्च रक्तचाप की समस्या से पीड़ित हैं। इसका मुख्य कारण मोटापा, आनुवांशिकता तथा अहितकर खान-पान की आदतें होती हैं। जब रक्त दबाव 140/90 या इससे अधिक होता है, तो उच्च रक्तचाप शुरू हो जाता है। इसकी उच्च अवस्था में व्यक्ति तीव्र बेचैनी और सरदरद अनुभव करता है। उच्च रक्तचाप रोगियों में 15 से 49 वर्ष की आयु के बीच की 11 % महिलाएँ और 15 % पुरुष हैं।

जब मस्तिष्क तक रक्त ले जाने वाली रक्त वाहिकाओं में थक्के बन जाते हैं तो मस्तिष्क के उस हिस्से में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है, जो आघात (स्ट्रोक) का कारण बनती है। उच्च रक्तचाप का यदि उचित उपचार समय रहते न किया गया तो यह हृदयाघात का कारण बन सकता है।

ऐसा ही एक और जीवनशैली का रोग 'स्विमर्स इयर' है, जो ज्यादा तेज आवाज में हेडफोन सुनने के कारण होता है। शोध अध्ययन के अनुसार 12.5 प्रतिशत व्यक्ति शोर के सतत संसर्ग के कारण स्थायी रूप से सुनने की क्षमता खो बैठते हैं और इनकी संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है।

कैंसर भी 70 से 90 प्रतिशत लोगों में जीवनशैली से जुड़ा एक भयावह रोग है। आज के तनावपूर्ण जीवन के कारण हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती जा रही है, जिसके कारण श्वेत रक्तकोशिकाएँ शरीर में प्रवेश करने वाले वायरस से लड़ने की शक्ति खो बैठती हैं। इसके कारण कोशिकाओं का अनियमित विकास होने लगता है, जो बाद में कैंसर के रूप में प्रकट होता है। कैंसर कई कारणों से पनप सकता है। दीर्घकालीन धूम्रपान—फेफड़ों के कैंसर

का तथा धूप का अत्यधिक संसर्ग—त्वचा कैंसर का कारण बनते हैं।

भारत में कैंसर रोगियों की संख्या सन् 2014 में जहाँ 13.3 लाख थी, वही सन् 2017 में 15.2 लाख हो गई, कैंसर के कारण। कैंसर के मुख्य कारण वायु प्रदूषण, तंबाकू तथा शराब सेवन और आहार संबंधी विकृतियाँ माने जा रहे हैं। इसी तरह सिरोसिस अत्यधिक शराब सेवन के कारण होने वाला यकृत का रोग है। शराब के अतिरिक्त हेपेटाइटिस के कारण भी यकृत बुरी तरह से क्षतिग्रस्त हो जाता है। यह एक जीवनशैली के मुख्य रोग के रूप में उभर चुका है, जब दैनंदिन जीवन के तनाव के चलते व्यक्ति शराब का अत्यधिक सेवन कर रहा है।

मानसिक रोग भी काफी हद तक जीवनशैली से जुड़े हुए हैं। आज लगभग 1 करोड़ लोग देश में मानसिक विकारों से पीड़ित हैं, जिन्हें चिकित्सीय उपचार की आवश्यकता है। सामाजिक सहयोग एवं उचित पोषण का अभाव, आर्थिक अस्थिरता आदि इसके मुख्य कारण माने गए हैं। कई शोधों के आधार पर पर्यावरण और मानसिक स्वास्थ्य के बीच घनिष्ठ संबंध पाया गया है। वायु प्रदूषण भी मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

सन् 2016 तक भारत में 3.5 करोड़ लोग अस्थमा के रोगी थे। आज दिल्ली में हर तीसरा बच्चा फेफड़ों के रोगों से ग्रसित है। वायु प्रदूषण 30 % असामयिक मौतों का कारण है, जिसका मानसिक रोगों से संबंध देखा गया है। जीवनशैली के इन गंभीर रूप लेते रोगों का समाधान बहुत कुछ व्यक्ति के हाथ में है तथा समय रहते अपनी जीवनशैली में आवश्यक सुधार करते हुए बहुत हद तक इन पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

इसके समाधान हेतु अपने आहार पर ध्यान दें। यथा संभव सादा, पौष्टिक एवं प्राकृतिक आहार लें। मौसमी फल एवं सब्जियों को प्राथमिकता दें। अत्यधिक चीनी व नमक के सेवन से बचें। चीनी की जगह गुड़ तथा नमक में सेंधानमक का प्रयोग करें। इनमें कटौती से सीधे हृदय रोग, मोटापे और मधुमेह के खतरे कम हो जाते हैं। पर्याप्त नींद लें; क्योंकि नींद ऊर्जा के स्तर को निर्धारित करती है, निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित करती है और आत्मविश्वासपूर्वक परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति देती है।

बहुत कम सोना और अत्यधिक सोना, दोनों व्यक्ति को चिड़चिड़ा एवं तनावग्रस्त बनाते हैं तथा व्यक्ति को जीवनशैली के विकारों की ओर ले जाते हैं। प्रातः व्यायाम के लिए कुछ समय अवश्य निकालें। इसमें सामान्य टहलने से लेकर आसन, प्रज्ञा योग या कुछ हलके व्यायाम शामिल हो सकते हैं। शुरुआत में इन्हें एक दिन छोड़कर कर सकते हैं और अभ्यास पड़ने पर इन्हें रोज किया जा सकता है।

भार कम करने से लेकर स्फूर्ति व ताजगी आदि के रूप में इनके प्रत्यक्ष लाभ देख सकते हैं। धीर-धीरे इनका समय बढ़ा भी सकते हैं। यदि व्यक्ति का भार अधिक है तो दिनचर्या में नियमित व्यायाम को शामिल करें। पाया गया है कि वजन में 10 % की कमी भी रक्तचाप, कोलेस्ट्रोल में कमी लाती है और व्यक्ति बेहतर अनुभव करता है।

इसके लिए छोटे-छोटे कदम उठा सकते हैं। अपने घर से ऑफिस तक वाहन से जाएँ, ऑफिस के भवन से थोड़ा दूर वाहन पार्क करें, जिससे कि वहाँ तक चलना पड़े। लिफ्ट के बजाय प्रायः सीढ़ियों का उपयोग करें। अपने घर की और बगीचे की सफाई स्वयं करें। टीवी या मोबाइल में चिपके रहने के बजाय अपने पालतू जानवरों को घुमाने ले जाएँ। यदि ऑफिस समीप है तो साइकिल का उपयोग करें।

यह भी शोध से स्पष्ट हो चुका है कि जो लोग अधिकांश समय अपने ऑफिस में टेबल पर, टीवी के सामने, फोन पर या मीटिंग में बैठे रहते हैं—उनकी बैठने की यह आदत स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। इसलिए बैठने के समय को कम करें तथा बीच में उठकर पाँच मिनट तक खड़े रहें।

ऐसे छोटे-छोटे अभ्यास शरीर की जकड़न से लेकर मोटापे को कम करने में मदद करेंगे। सुबह का शुभारंभ दो गिलास पानी के साथ भी करें। यदि यह गुनगुना हो तो और बेहतर है। यह अवशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने में मदद करता है।

इससे आंतरिक अंग-अवयवों का शोधन होता है, जिससे भोजन के पोषक तत्त्वों का उचित अवशोषण हो पाता है। यह भार कम करने में मदद करता है। इससे खाने की अधिक आदत पर भी अंकुश लगता है। साथ ही त्वचा में चमक आती है और नियमित पसीना आने तथा कोशिकाओं

के पुनर्निर्माण से शरीर का तापमान भी नियंत्रण में रहता है। इन सबके साथ हमारी मन:स्थिति भी महत्त्वपूर्ण होती है। जब हम मानसिक एवं भावनात्मक रूप से बेहतर नहीं होते, तो हम शारीरिक रूप से भी स्वयं को स्वस्थ अनुभव नहीं कर पाते हैं। इसके लिए उन चीजों से जुड़ने का प्रयास करें, जो आपको खुशी देती हों और उन अवरोधों को तलाशें, जो आपकी प्रसन्नता में बाधा बने हुए हैं; इनको जानने के साथ ही हटाने का भरसक प्रयास करें।

स्वयं से जुड़ना, जीवन की लय को थामे रहना यह महत्त्वपूर्ण होता है और एक स्वस्थ एवं संतुलित जीवनशैली इससे जुड़े विकारों से लड़ने का सरल एवं प्रभावी उपाय सिद्ध होती है। ❑

राजा जनक राजपद पर होते हुए भी विरक्त और वीतरागी पुरुष थे, किंतु नर-देह हो तो प्रकृति के गुणों को भी स्वीकार करना पड़ता है। एक दिन राजा जनक को भी अभिमान हो गया। ऐसे में स्वयं नारायण ने उनकी परीक्षा लेने की सोची एवं वे एक तपस्वी के रूप में उनके समक्ष पहुँचे। उन्होंने जनक से बारंबार प्रश्न करना प्रारंभ किया और माया का ऐसा खेल खेला कि जनक उनसे क्रोधित हो गए। क्रोधावेश में उन्होंने तपस्वी को अपने राज्य से बाहर निकल जाने का आदेश दिया।

आदेश प्राप्त करते ही तपस्वी ने मुस्कराकर जनक से कहा—''राजन्! मैं सहर्ष आपका राज्य छोड़ देता हूँ, केवल इतना बता दें कि आपके राज्य की सीमाएँ कहाँ तक हैं ?'' यह सुनते ही जनक सोच में पड़ गए। उन्हें तुरंत भान हुआ कि जब भगवान ही कर्त्ता हैं, कारक हैं और कर्म के कारण हैं तो इस संसार की किसी भी वस्तु पर उनका क्या आधिपत्य है ?

सत्य प्रकट होते ही माया का संसार उनकी आँखों के सामने से छिन्न-भिन्न हो गया और स्वयं नारायण तपस्वी के रूप में सामने खड़े दिखाई पड़े। विवेक की आँखें जब खुल जाती हैं तो माया का अंधकार स्वत: ही नष्ट हो जाता है।

आसुरी स्वभाव वाले व्यक्तियों की प्रवृत्ति और निवृत्ति

(श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसम्पदविभाग योग नामक सोलहवें अध्याय की सातवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के छठे श्लोक पर इससे पूर्व की किस्त में चर्चा की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि इस लोक में दो प्रकार के प्राणियों की सृष्टि है—दैवी और आसुरी। दैवी को तो मैंने विस्तार से कह दिया, अब हे पार्थ! तुम मुझसे आसुरी वृत्ति के विषय में सुनो। सर्ग का अर्थ होता है सृष्टि और भूतसर्ग का अर्थ है—भूतों की सृष्टि। भगवान श्रीकृष्ण इस श्लोक में कहते हैं कि इस लोक में भूतों की सृष्टि यानी मनुष्य समुदाय दो ही मुख्य प्रकार का है—एक तो दैवी प्रकृति वाला और दूसरा आसुरी प्रकृति वाला। वे कहते हैं कि इन दोनों में से दैवी प्रकृति के विषय में तो वे इस अध्याय के पहले से तीसरे श्लोक के मध्य विस्तारपूर्वक चर्चा कर चुके हैं और अब वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्यों के विषय में बोलेंगे। कहने का एक अभिप्राय यह भी है कि वैसे तो मनुष्य समुदाय में अनेकों भेद हैं, परंतु प्रधानतया ये ही दो भेद हैं, ये ही दो विभाग हैं।

यहाँ ध्यान रखने योग्य बात मात्र ये ही हैं कि दैवी और आसुरी—ये दोनों भिन्न प्रवृत्तियाँ हैं, दो भिन्न व्यक्ति नहीं हैं। देव एवं असुर के मध्य का भेद उनके मध्य की प्रवृत्ति का भेद है; और ये भेद उनमें स्थित प्रकृति के गुणों के आधिक्य या न्यूनता के आधार पर तय होता है। अन्य प्राणियों में भी कुछ प्राणी सात्त्विक प्रकृति के हैं तो कुछ तामसिक। गाय की प्रवृत्ति अलग है, हिरन की प्रवृत्ति अलग है तो साँप व सिंह की प्रवृत्ति अलग है। यहाँ तक कि ऐसे ही भेद पौधों व पादपों में देखने को मिल जाते हैं। तुलसी की प्रवृत्ति अलग है, लहसुन की अलग है। यहाँ श्रीभगवान जब दैवी और आसुरी शब्दों का प्रयोग करते हैं तो उसके पीछे उनकी मंशा उसी प्रवृत्ति की ओर इशारा करने की है, जो इन दोनों के मध्य का मूल भेद है। इन दोनों के मध्य इस भेद को बताने के साथ ही वे कहते हैं कि दैवी प्रवृत्ति के विषय में तो वे विस्तार से कह चुके हैं और अब वे आसुरी प्रवृत्ति के विषय में बोलेंगे।]

ऐसा कहने के बाद श्रीभगवान कहते हैं कि

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥ 7॥

शब्दविग्रह—प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, जनाः, न, विदुः, आसुराः, न, शौचम्, न, अपि, च, आचारः, न, सत्यम्, तेषु, विद्यते।

शब्दार्थ-आसुर-स्वभाव वाले (**आसुराः**), मनुष्य (**जनाः**), प्रवृत्ति (**प्रवृत्तिम्**), और (**च**), निवृत्ति (इन दोनों को) (**निवृत्तिम्**), भी (**च**), नहीं (**न**), जानते। (इसलिए) (**विदुः**), उनमें (**तेषु**), न (तो) (**न**), बाहर-भीतर की शुद्धि है (**शौचम्**), न (**न**), श्रेष्ठ आचरण है (**आचारः**), और (**च**), न (**न**), सत्यभाषण (**सत्यम्**), ही (**अपि**), है (**विद्यते**)।

अर्थात आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य किसमें प्रवृत्त होना चाहिए और किससे निवृत्त होना चाहिए—इसको नहीं जानते और उनमें न तो शुचिता, न श्रेष्ठ आचरण और न ही सत्यपालन होता है। मनुष्य को उस कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए, जिसके आचरण या अनुशीलन से स्वयं के परिमार्जन की अथवा लोक-कल्याण की संभावना बनती हो। जिस कर्म के आचरण से स्वयं का तथा समष्टि का अकल्याण होता हो, उनको हानि पहुँचती हो—वह कर्म निवृत्ति के योग्य होता है।

श्रीभगवान यहाँ इसी संदर्भ में इशारा करते हैं कि आसुरी स्वभाव वाले व्यक्ति इस कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य संबंधी प्रवृत्ति व निवृत्ति के भेद को नहीं समझते अथवा समझना नहीं चाहते, इसलिए वे उनका आचरण नहीं करते।

जिनके लिए मात्र अपना स्वार्थ, अपना अहंकार, अपना ऐशोआराम मुख्य हो जाते हैं—उनके लिए धर्म, न्याय, नीति, सदाचार, कर्त्तव्य, दायित्वबोध जैसी बातें गौण हो जाती हैं।

ऐसे व्यक्ति फिर उन्हीं कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, जिनसे उनको सुख मिलता दिखता है एवं जिन कर्मों को करने में उनको स्वयं का स्वार्थ सधता न दिखे तो उन कर्मों से उनकी निवृत्ति होती है अर्थात वे उन कर्मों को करने से दूर रहते हैं।

महाभारत में ही विदुर एवं दुर्योधन के मध्य संवाद आता है, जिसमें विदुर दुर्योधन से प्रश्न करते हैं कि जब दुर्योधन एवं युधिष्ठिर दोनों एक ही गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण करने गए; जब दोनों को पढ़ाने वाले आचार्य एक ही थे; दोनों के सहपाठी एक थे तब क्या कारण है कि एक जैसा परिवेश मिलने पर भी युधिष्ठिर तो धर्म का प्रतीक है एवं सदा श्रेष्ठ आचरण करता दिखता है; जबकि दुर्योधन सदा अधर्म, अनीति के पथ पर चलता एवं दुराचरण करता दिखता है।

प्रत्युत्तर में दुर्योधन कहता है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः
जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनोऽपि देवेन हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

अर्थात मैं जानता हूँ कि धर्म क्या है, परंतु उस ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं है। मैं यह भी जानता हूँ कि अधर्म क्या है, परंतु उससे मेरी निवृत्ति नहीं है। ऐसा लगता है कि मानो कोई शक्ति मेरे हृदय में आसीन है और वह जिधर मुझे नियुक्त कर देती है, मैं वहीं कर्म करने को तत्पर हो जाता हूँ। आसुरी प्रवृत्ति के लोगों का आचरण इसी प्रकार का होता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि चूँकि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति, क्या करना है और क्या नहीं करना—इन दोनों को ही नहीं जानते, इसलिए उनमें न तो शुचिता होती है न ही वे श्रेष्ठ आचरण करते हैं और न ही वे सत्यपालन कर सकते हैं। यहाँ शुचिता का अर्थ मात्र बाहर की स्वच्छता से ही नहीं, बल्कि मन, विचार व भावनाओं की पवित्रता से भी है। इससे पूर्व तेरहवें अध्याय के सातवें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥ 13/7॥

अर्थात श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दंभाचरण का अभाव, किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से न सताना, क्षमा का भाव, मन-वाणी की सरलता, श्रद्धासिक्त होकर गुरु की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, अंत:करण की स्थिरता और मन-इंद्रियों सहित शरीर का निग्रह करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसी श्लोक में वे शौच को विस्तार से समझाते हुए कहते हैं सत्यतापूर्वक शुद्ध व पवित्र व्यवहार करने से द्रव्य की शुद्धि होती है, उस द्रव्य से उपार्जित अन्न से आहार की शुद्धि होती है। यथायोग्य शुद्ध व्यवहार से आचरण की शुद्धि होती है और जल तथा मिट्टी के द्वारा प्रक्षालन करने से शरीर की शुद्धि होती है। ये सब बाहर की शुद्धियाँ हैं। इसके साथ ही राग-द्वेष, छल-कपट आदि विकारों

आत्मनिरीक्षण और आत्मनिर्माण ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। साधना न तो परावलंबन है और न याचना। उसे आत्मपरिष्कार का सुनियोजित आधार ही माना गया है।

का नाश होकर अंत:करण के स्वच्छ हो जाने का नाम भीतर की शुद्धि है। इन दोनों शुद्धियों का सम्मिलित अर्थ शौच कहलाता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी स्वभाव वाले व्यक्तियों में बाहर और भीतर की पवित्रता का तो अभाव होता ही है; साथ ही उनमें ऐसे आचरण का भी अभाव होता है, जो बाहर तथा भीतर की पवित्रता को बनाए रखता है। इसके साथ ही वे निष्कपट, हितकर, सत्य भाषण को भी करने से विमुख होते हैं। इस तरह इस सूत्र में योगेश्वर श्रीकृष्ण अर्जुन को स्पष्ट करते हैं कि आसुरी स्वभाव वाले व्यक्तियों को यह विवेक ही नहीं होता कि क्या धर्म है, क्या अधर्म और यदि वे जानते भी हैं तो उनकी धर्म में प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्म में प्रवृत्ति होती है। इसलिए उनमें शुचिता का, श्रेष्ठ आचरण का तथा सत्य भाषण का सर्वथा अभाव होता है। (क्रमशः)

मोबाइल फोन की चुनौतियाँ और समाधान

आज हम मोबाइल युग के दौर से गुजर रहे हैं, जिसमें प्राय: हर व्यक्ति मोबाइल का उपयोग करता है। क्या मजदूर, क्या रिक्शावाला, क्या बच्चा, क्या बूढ़ा—हर व्यक्ति एवं आयुवर्ग इसकी गिरफ्त में है। इसमें युवाओं और किशोरों की एक पीढ़ी तो ऐसी है, जिसका जन्म ही इसकी गोद में हुआ, जिसको मोबाइल पीढ़ी नाम दिया जा रहा है। इसके तो जैसे जीवन का सार ही मोबाइल में छिपा हुआ है, इसके बिना यह जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकती।

इस समय स्मार्टफोन के 69.9 करोड़ उपभोक्ताओं के साथ भारत विश्व में दूसरे स्थान पर है, चीन इससे दुगनी संख्या के साथ पहला स्थान रखता है। अमेरिका 27.5 करोड़ संख्या के साथ तीसरे स्थान पर है। सन् 2021 तक भारत में 76 करोड़ प्रयोगकर्त्ता होने का अनुमान है। भारत में सन् 2015 में 18.21 प्रतिशत जनसंख्या स्मार्टफोन रखती थी, जो सन् 2017 तक 25 प्रतिशत हो गई।

ग्रामीण भारत में इसकी संख्या तीव्रगति से बढ़ रही है। सन् 2015 में ग्रामीण भारत में स्मार्टफोन की पहुँच मात्र 5 प्रतिशत थी, जो 2018 तक बढ़कर 25 प्रतिशत हो गई है। ग्रामीण भारत में 2018 में 35 प्रतिशत वृद्धि देखी गई, वहीं शहरी क्षेत्रों में यह मात्र 7 प्रतिशत रही। एक अनुमान के अनुसार अगले दो वर्षों में उपभोक्ताओं की संख्या 82 करोड़ तक पहुँचने वाली है। देश में किशोर एवं युवा तो स्मार्टफोन के उपयोग को लेकर दीवानगी की हदें पार कर रहे हैं।

एक अनुमान के हिसाब से देश के 80 प्रतिशत कालेज या विश्वविद्यालय जा रहे विद्यार्थी स्मार्टफोन का उपयोग कर रहे हैं। भारत के युवाओं पर हुए एक शोध अध्ययन से यह तथ्य उभरकर आया कि वे दिन में लगभग 150 बार फोन को चेक करते हैं और औसतन 4 से 7 घंटा उस पर बिताते हैं। इनमें 14 प्रतिशत स्मार्टफोन का प्रयोग 3 घंटे या इससे कम करते हैं; जबकि 63 प्रतिशत युवा 4 से 7 घंटा प्रयोग करते हैं।

23 प्रतिशत युवा तो 8 घंटे से अधिक समय मोबाइल के साथ बिता रहे हैं। इस शोध के लिए 20 केंद्रीय विश्वविद्यालय के 200 विद्यार्थियों का सर्वेक्षण किया गया था। आश्चर्य नहीं कि मोबाइल के अत्यधिक उपयोग के कारण कई तरह की शारीरिक एवं मानसिक विकृतियाँ पनप रही हैं। सरदरद, कान में दरद, गरमाहट का एहसास, थकान, आँखों में खिंचाव जैसे शारीरिक लक्षण आम हो गए हैं।

वाहन चलाते समय फोन को दुर्घटना का एक प्रमुख कारण माना जा रहा है। इसके इलैक्ट्रोमैग्नेटिक विकिरणों के कारण रैम (रेपिड आई मूवमेंट) नींद कम हो जाती है, जिसके कारण नींद संबंधी विकार पनप रहे हैं। शुक्राणु की गुणवत्ता तक को प्रभावित होते देखा जा रहा है। यह हमारे स्नायविक संस्थान को प्रभावित करता है और कैंसर का भी कारण बन सकता है।

स्मार्टफोन की लत के कारण मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ रहा है और जीवन की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है। सरदरद सबसे आम लक्षण पाया गया है, इसके बाद चिड़चिड़ापन और क्रोध का नंबर आता है। एकाग्रता की कमी, शैक्षणिक उपलब्धि में गिरावट, उद्विग्नता आदि अन्य मानसिक लक्षण हैं।

मोबाइल का अत्यधिक उपयोग व्यक्ति को अकेलेपन का तीव्र एहसास देता है और आत्मसम्मान के भाव को भी न्यून करता है। युवापीढ़ी में आगे बढ़ने की अधीरता और किसी भी कीमत पर पहचान बनाने का फितूर एक चिंता का विषय है। इस जल्दबाजी में उससे कई तरह की गलतियाँ हो जाती हैं। इसके चलते साइबर अपराध के मामले भी बढ़ रहे हैं। कुछ युवा हैकिंग, ट्रोलिंग, फिशिंग, साइबर बुलिंग आदि के शिकार हो रहे हैं, तो कुछ युवा ऐसे मामलों में संलिप्त पाए जा रहे हैं।

सोशल मीडिया में दोस्तों की भरमार है, लेकिन इसके बावजूद वे भीड़ में स्वयं को अकेला पाते हैं और अवसाद के शिकार हो रहे हैं। कई स्थानों पर तो आत्महत्याओं तक के मामले सामने आ रहे हैं। साइबर बुलिंग किशोरों से जुड़ा एक बड़ा साइबर अपराध है—भारत जिसमें विश्व में तीसरे स्थान पर आता है।

इसके कारण आत्महत्या जैसी घटनाएँ बढ़ रही हैं। विद्यार्थियों में उग्रता व हिंसा की भावना में इसके कारण वृद्धि हो रही है। उनका आत्मविश्वास कम हो रहा है तथा वे अवसाद का शिकार हो रहे हैं। मोबाइल के दुरुपयोग के चलते युवाओं में आपराधिक वृत्तियों को पनपते देखा जा रहा है, जिसके कारण कई शैक्षणिक संस्थानों में मोबाइल पर आंशिक या पूर्णतया बैन तक की बातें हो रही हैं। स्मार्टफोन की उपयोगिता को देखते हुए इस पर बैन की जगह इसका सही उपयोग समय की माँग है।

युवा विद्यार्थियों के संदर्भ में यह और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है; क्योंकि इंटरनेट और मोबाइल के अधिक प्रयोग से एकाग्रता कम हो रही है और वे चीजों को जल्द भूलने लगे हैं। इससे उनकी चेतनता भी प्रभावित हो रही है। मानसिक शिथिलता की अवस्था में फिर उनका लक्ष्य के प्रति समर्पण और धारणा शक्ति कमजोर पड़ते हैं। मोबाइल के शिक्षा से संबंधी प्रयोग को जानते हुए भी विद्यार्थी अधिकांश समय संगीत सुनने या मोबाइल गेम खेलने में या अपने दोस्तों से चैटिंग करने या सोशल मीडिया में खोए रहने में बिता रहे हैं। कुल मिलाकर मोबाइल उनकी पढ़ाई में एक व्यवधान के रूप में सामने आ रहा है, जिसमें वे अपना समय बरबाद कर रहे हैं।

जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्यों की कीमत पर वे आभासी जगत में विचरण कर रहे होते हैं। 24 घंटे मोबाइल से चिपके रहने के कारण उद्विग्नता, तनाव और अवसाद जीवन के अंग बनते जा रहे हैं। मन की इस अस्थिर एवं असंतुलित अवस्था में विद्यार्थी अपने लक्ष्य का सही निर्धारण नहीं कर पाते तथा अध्ययन में चूक हो जाती है। अपना फोन सदा सामने होने के कारण वे सही ढंग से सो भी नहीं पाते हैं। लगातार फोन चैक करते रहते हैं, जिस कारण सोने के बावजूद तनाव से मुक्त नहीं हो पाते। ऐसे में स्मार्टफोन का सही उपयोग एक चुनौती की तरह सामने है। इसके लिए कुछ बातों का ध्यान रखा जाए तो इसका उचित लाभ उठाया जा सकता है।

आवश्यक है कि सोने से पहले फोन का उपयोग न करें। फोन से अनावश्यक ऐप्पस हटा दें। सप्ताह में एक दिन मोबाइल बंद रखें। रात को सोते समय फोन का स्विच ऑफ कर दें या इसे फ्लाइट मोड में रखें, जिससे इसमें किसी तरह के नोटिफिकेशन नहीं आ पाएँगे और प्रात: उठने पर शांति से अपनी दिनचर्या का शुभारंभ हो सकेगा। इसमें फोन एडिक्शन ट्रैकर एप्स लगा सकते हैं, जिससे पता चले कि सप्ताह भर में कितना समय मोबाइल में बीत रहा है, जिसका अन्यथा अंदाज नहीं रहता।

इसके आधार पर इसके अत्यधिक उपयोग पर अंकुश लगाया जा सकता है। वस्तुत: यह समय युवाओं एवं किशोरों के सजग, सचेत होने का है और माता-पिता एवं अभिभावकों का इसमें सहयोग अपेक्षित है, जिससे नई पीढ़ी मोबाइल के मायावी जाल में फँसकर अपने जीवन को अंधकार की ओर न धकेले।

स्मार्टफोन एक तरह की दुधारी तलवार की तरह है, इसका सदुपयोग बन पड़ा तो यह सृजन की असीम संभावनाएँ लिए हुए है और यदि इसका दुरुपयोग होता है, तो यही व्यक्ति की हर तरह की बरबादी के सभी सरंजाम भी साथ लिए हुए है। प्रश्न एक ही है कि हम कितने स्मार्ट ढंग से इस स्मार्टफोन की मायावी चुनौती से जूझने के लिए तैयार हैं। ❑

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

—कठोपनिषद् 1/3/14

अर्थात आत्मोन्नति का मार्ग छुरे की धार के समान तीक्ष्ण है। अत: उस पर चलना बहुत कठिन है। हे मनुष्यो! उस पर चलने के लिए उठो, जागो और श्रेष्ठजनों के पास जाकर और उस पथ को समझकर आगे बढ़ने का प्रयत्न करो।

प्लास्टिक की बोतलों से परहेज करें

दुर्भाग्यवश प्लास्टिक हमारे जीवन का अंग बन गया है। हमें इस आदत को दूर करने की जरूरत है। शहर हो या गाँव, स्कूल हो या सेमिनार हॉल, रेलवे स्टेशन हो या बस अड्डा, पिकनिक हो या सगाई-समारोह—क्या हम अंदाजा लगा सकते हैं, इन सभी जगहों में आजकल क्या चीज समान होती है? जी हाँ! प्लास्टिक वाली पानी की बोतलें। जाति, वर्ण, धर्म आदि अलग-अलग हो सकते हैं; लेकिन आजकल हर तरफ, हर जगह बिना किसी भेदभाव के प्लास्टिक की बोतलों में पानी मिलता है। दुनिया में यह कैसा तूफान आया हुआ है कि जिधर देखो, उधर पानी की बोतलें ही दिख रही हैं।

आज की तारीख में ऐसा कोई एक मिनट नहीं गुजरता, जब पूरी दुनिया में 10 लाख से ज्यादा पानी की बोतलें खरीदी या बेची न जाती हों। पर्यावरणविद् परेशान हैं; क्योंकि पानी की बोतलों का 90 फीसदी हिस्सा रिसाइकिल नहीं हो पाता है। प्लास्टिक की इन बोतलों को प्राकृतिक तौर पर समाप्त होने में चार सौ साल से भी ज्यादा का समय लग जाता है।

यह जानते हुए भी लोग पानी की बोतलों के इस्तेमाल से बाज नहीं आ रहे। ऐसा इसलिए है; क्योंकि बाजार में हर तरफ ये बोतलें मौजूद हैं। अखबारों में, टीवी चैनलों में, सोशल मीडिया में और तमाम बड़े-बड़े सेमिनारों में पर्यावरणविद् लोगों को कितना ही आगाह कर रहे हों।

पर्यावरणविद् कितनी ही चेतावनी दे रहे हों, लेकिन उद्योगपतियों के लिए प्लास्टिक इतना लाभप्रद है कि वे किसी भी कीमत पर इस पर प्रतिबंध नहीं लगने दे रहे हैं। हर तरफ प्लास्टिक उत्पाद मौजूद हैं तो लोग उनके इस्तेमाल से जरा भी नहीं हिचक रहे हैं, भले ही हर गुजरते दिन पर्यावरण की दृष्टि से दुनिया नरक बनती जा रही हो। उद्योगपतियों को मुनाफे का लालच और आम आदमी को मिलती तात्कालिक सहूलियत—इन दो वजहों से प्लास्टिक की पानी बोतलें अब हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बन गई हैं।

पानी को खरीदकर पीना अब अखरता नहीं, बल्कि यह जीवनशैली का एक हिस्सा बन गया है। यहाँ तक कि सफर में पानी खरीदने के बजाय घर से लेकर चलना अब पिछड़ेपन की निशानी बन गया है। दुकान से पानी खरीदना अब हमारी आदत का हिस्सा है। अब कहीं कोई प्याऊ लगाए दिख जाता है तो लोग उसे विचित्र दृष्टि से देखते हैं। एक जमाना था जब क्या उत्तर, क्या दक्षिण और क्या पूरब-पश्चिम—देश में हर तरफ गरमियाँ आते ही प्याऊ एक अनिवार्य दृश्य बन जाता था।

रेलवे स्टेशन हो या बाजार-हाट—हर जगह प्याऊ मौजूद होते थे। वह भी पूरे आदर के साथ और बिलकुल मुफ्त, लेकिन पानी की प्लास्टिक बोतलों ने आज सबको समाज से खदेड़ दिया है। यह अकारण नहीं है कि आज दुनिया में बोतलबंद पानी का कारोबार अरबों रुपयों का है। दुनिया भर में हर मिनट पानी की 10,54,000 बोतलें खरीदी व बेची जा रही हैं। अब चूँकि पानी की प्लास्टिक बोतलों का 90 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा रिसाइकिल होता नहीं, इसलिए प्लास्टिक बोतलों का अधिकांश कचरा लैंडफिल साइटों पर जाता है; इसीलिए हर बड़े शहर के इर्द-गिर्द प्लास्टिक की पानी की बोतलों के तमाम पहाड़ खड़े हो गए हैं। जल्द ही यह समस्या दुनिया भर के शहरों के सामने सबसे बड़ी चुनौती के रूप में सामने आ रही है।

इन लैंडसाइटों में जो पानी की बोतलें नहीं पहुँच रहीं, वे किसी-न-किसी तरीके से समुद्र में पहुँच रही हैं। समुद्रों में कितनी पानी की बोतलें पहुँच चुकी हैं। इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि पर्यावरणविदों के मुताबिक सन् 2050 तक समुद्रों में मछलियों से ज्यादा वजन के बराबर प्लास्टिक की बोतलें मौजूद होंगी। सवाल है क्या समुद्र में मछलियों से ज्यादा पानी की बोतलों को दुनिया बरदाश्त कर पाएगी? हम जानते हैं कि प्लास्टिक अभी भी समुद्र के जीवों की जान ले रहा है, लेकिन उस दिन के बारे में सोचिए जब समुद्री जीवों से ज्यादा जानलेवा प्लास्टिक वहाँ होगा।

यह सिर्फ पानी यानी समुद्री जीवों के अस्तित्व पर मँडराता संकट नहीं होगा, बल्कि यह इनसान के अस्तित्व का संकट होगा। कोई यह न कहे की पानी की बोतलें और चिप्स के पैकेट जिंदगी की उतनी बड़ी जरूरत हैं, जितनी जिंदा रहने के लिए हवा। जी हाँ! पानी की बोतलों और चिप्स के पैकटों के बिना भी हम जिंदा रह सकते हैं। ये जरूरत नहीं हैं, बल्कि शौक के लिए खरीदे जाते हैं, फिर इन्हें साजिशन शौक बना दिया जाता है। सिर्फ संस्थाओं और सरकारों को ही इस सबके लिए क्यों कोसा जाए; इस सबके लिए जितने जिम्मेदार ये हैं, उतने ही जिम्मेदार आमजन भी हैं; क्योंकि इनका उपयोग तो हम सभी करते हैं।

इस पर यह अलग से कहने की जरूरत नहीं है कि प्लास्टिक से होने वाला प्रदूषण सबसे ज्यादा और घातक है; क्योंकि ये ऐसी चीजें होती हैं, जो जल्दी से नष्ट भी नहीं होती हैं। साथ ही पानी से लेकर हवा तक को ये प्रदूषित करती हैं। यह जानते हुए भी सिर्फ हम ही नहीं, दुनिया के तमाम लोग भी पानी की बोतलों का जमकर इस्तेमाल करते हैं। दुनिया भर में न केवल प्लास्टिक की बोतलों की खपत बहुत ज्यादा है, बल्कि बढ़ ही रही है, घट नहीं रही। तमाम पर्यावरणीय संस्थानों द्वारा इसे लेकर वैश्विक स्तर पर जागरूकता पैदा की जा रही है; साथ ही इससे निजात पाने के लिए नई-नई खोजें भी की जा रही हैं, लेकिन अभी तक तो वैज्ञानिकों को इस समस्या का कोई स्थायी समाधान नहीं मिला है।

हाल ही में वैज्ञानिकों ने एक ऐसे इंजाइम का निर्माण किया है जो प्लास्टिक की बोतलों को अपने आप तोड़ सकता है, लेकिन खतम नहीं कर सकता, फिर भी इसे विशेषज्ञों द्वारा बहुत उम्मीदों से देखा जा रहा है। जब तक प्लास्टिक के प्रदूषण से निपटने की कोई ठोस तकनीकी व्यवस्था नहीं होती, तब तक हम इतना तो कर ही सकते हैं कि प्लास्टिक बोतलों में पानी पीना छोड़ दें। वैसे भी अभी हुए एक शोध में प्लास्टिक बोतलों का पानी बेहद प्रदूषित पाया गया है। भारत में प्लास्टिक बोतल और प्लास्टिक पाउच में पानी बेचने का कारोबार अब न केवल बहुत पुराना हो चुका है, बल्कि बहुत ज्यादा बड़ा भी हो चुका है। एक अनुमान के मुताबिक इस व्यापार का लगभग 9 हजार करोड़ रुपये का कारोबार प्लास्टिक बोतलों और पाउचों के जरिए होता है।

हमें समझना होगा कि प्लास्टिक की बोतलें हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। अत: हमें इनसे दूरी बनाए रखने की जरूरत है। जनसंकल्प और दृढ़ इच्छाशक्ति से इनसे मुक्ति पाई जा सकती है और इससे पर्यावरण प्रदूषण भी नियंत्रित हो सकता है। ❑

गुजरात के प्रसिद्ध सेठ दानमल हँका जी का जवान बेटा असमय मारा गया। अभी उसके विवाह को एक वर्ष ही हुआ था। सेठ जी को पुत्रशोक था, पर उससे भी ज्यादा चिंता उन्हें अपनी बहू की थी कि वो अपना शेष जीवन कैसे काटेगी। उन्होंने निश्चय किया कि वे उसका फिर से विवाह कराएँगे। समाज में हलचल मच गई।

नगर के तथाकथित गणमान्य नागरिक सेठ जी के पास पहुँचे और उनसे निवेदन करते हुए बोले—"सेठ जी! अधर्म मत करिए। विधवा का विवाह करवाएँगे तो बड़ा पाप लगेगा।"

सेठ जी बोले—"मित्रो! नर और नारी दोनों एक समान हैं। ज्यादा पाप तो तब लगेगा, जब मैं पुत्रीतुल्य बहू के होते इसके साथ पुत्रीवत् व्यवहार न करूँ।" आलोचना करने वालों के मुँह बंद हो गए।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी –2

व्यक्तित्व का परिष्कार

(गतांक से आगे)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने इस उद्‌बोधन में इस शाश्वत सत्य की ओर इशारा करते हैं कि मनुष्य की आंतरिक उन्नति उसके व्यक्तित्व के परिशोधन पर निर्भर करती है। यदि व्यक्तित्व परिशोधित हो सके एवं भावनाएँ परिमार्जित हो सकें तो मानव जीवन की गौरव गरिमा अक्षुण्ण बनी रहती है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि परिशोधन करने के लिए व्यक्ति को स्वयं को तपाना पड़ता है और अपने कुसंस्कारों को समूल नष्ट करना पड़ता है। जिस तरह अग्नि में से तपकर निकलने पर धातुएँ मूल्यवान हो जाती हैं, उसी तरह तप की अग्नि से तपने के बाद साधारण मनुष्य भी असाधारण व्यक्तित्व के स्वामी बन जाते हैं। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि सबसे पहले साधक को वासनाओं का परिशोधन करना पड़ता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

अग्नि संस्कार का प्रभाव

मित्रो! आग का संस्कार करने से हर चीज कीमती हो जाती है। आग के संस्कार से हर चीज मजबूत होती है। आप चाहे जिसका उदाहरण ले लीजिए। आग के सैकड़ों उदाहरण बता दूँ आपको। कच्ची ईंट दो कौड़ी की होती है। पानी बरसता है, तो गल जाती है। जब हम ईंट को तपा देते हैं और उस गरम की हुई ईंट को दीवार में लगा देते हैं, तो सौ वर्ष तक, हजार वर्ष तक जिंदा रहती है। मैं गरमी की प्रशंसा कर रहा हूँ। एक कटोरी भर पानी को जब हम गरम करते हैं, तो वह भाप बन जाता है और हमारा खाना पका देता है। एक कटोरी पानी क्या खाना पकाएगा?

अरे बटे! एक कटोरी पानी को आप समझते भी हैं कि क्या कमाल करता है? हम तो ज्यादा पानी पी लेंगे। हाँ, मैं जानता हूँ कि आप एक कटोरी पानी, एक गिलास पानी, एक लोटा पानी पी सकते हैं, पर एक कटोरी पानी गरम करने के बाद में पानी की क्या हालत होती है, आप जानते हैं? वह किसी को जला भी सकता है। स्टोव फट जाए तब, प्रेशरकुकर फट जाए तब क्या हो सकता है? लखनऊ में एक मिनिस्टर के यहाँ पूरी कोठी जल गई। कैसे हुआ? पानी गरम करने का गीजर, उसका बटन ऑन करके घूमने चले गए। बस, उसमें पानी गरम होता रहा, उबलता रहा। ज्यादा स्टीम के कारण गीजर फटा और बँगले का आधा हिस्सा साफ कर दिया।

हम देते हैं तप का प्रशिक्षण

मित्रो! रेलगाड़ी में जरा-सा पानी होता है। उस पानी की भाप की नली पिस्टन से जोड़ दी जाती है। पिस्टन घूमता है और रेलगाड़ी का इंजन धड़धड़ाता हुआ सैकड़ों मील की स्पीड से, हजारों टन माल से लदे डिब्बे कितनी तेज गति से दौड़ते हैं। गाड़ी कौन चलाता है? पानी। गरम पानी की ताकत बहुत है और गरम इनसान की ताकत बहुत है। गरम इनसान किसे कहते हैं? बेटे! हम गरम इनसान का प्रशिक्षण देते हैं। आपको भीतर से गरम करने की नसीहत देते हैं।

गरम करने की नसीहत से क्या मतलब है? गरम करने की नसीहत से हमारा मतलब है—तप करना। आपको हम तप करने का शिक्षण देते हैं। आध्यात्मिक जीवन को, व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए एक काम अनिवार्य है और वह आपको करना पड़ेगा। क्या करना पड़ेगा? तप करना पड़ेगा। तप क्या होता है? तप उसे कहते हैं—जिसमें कि आदमी कष्ट सहना सीखता है। मुसीबत उठाना सीखता है। भूखा रहना सीखता है। धूप में खड़ा रहना सीखता है। नंगे पाँव चलना सीखता है। इसे क्या कहते हैं? इसे तप कहते हैं।

मित्रो! आपने तपस्वी देखे हैं न? हाँ, तपस्वी देखे हैं। चारों ओर आग जला लेते हैं और बीच में बैठे रहते हैं। पानी में खड़े रहते हैं। तपस्वी कौन होते हैं? वे होते हैं, जो भूखे रहते हैं और जो पानी पी करके ही रह जाते हैं। जो एकादशी का उपवास करते हैं, जो नमक नहीं खाते, जो शक्कर नहीं खाते। वे कौन हैं? ये तपस्वी लोग हैं।

यह तपस्या का बहिर्मुखी क्रियाकलाप के बारे में बताया था कि योग का बहिरंग क्रियाकलाप वह है, जिसमें हम गेरूआ रंग के कपड़े पहनते हैं। माला पहनते हैं, कान में छल्ले पहनते हैं। योग का बहिरंग क्रियाकलाप वह है, जिसमें हम जटाएँ रखते हैं। जिसमें चिमटा और कमंडलु हाथ में धारण कर लेते हैं। यह सब योग के बहिरंग क्रियाकलाप हैं, ध्यान रखना। ये अंतरंग क्रियाकलाप नहीं हैं, आप इसे भूल मत जाना। ये बहिरंग क्रियाकलाप अगर आपने धारण कर लिए हों और अंतरंग योग एवं अंतरंग तप आपके पास न आया हो, तो उसको मैं क्या कह सकता हूँ? उसको मैं बहुरूपिया कहूँगा।

पुरानी आदतों को बदलने का नाम है तप

मित्रो! मैं आपको तप के बारे में बता रहा था कि तप किसे कहते हैं? तप बेटे, उसे कहते हैं—जिसमें हमारे बहिरंग जीवन की पुरानी वाली आदतों को दबाव डालकर बदल देते हैं और कहते हैं कि हम आपको इस रूप में जिंदा नहीं रहने देंगे और हम आपको बदल देंगे। आपको हमारा कहना मानना चाहिए। हम आपके कुसंस्कारों को बरदाश्त नहीं कर सकते।

हमारे शरीर की गतिविधियाँ जिस तरीके से चलनी चाहिए, उसके अंदर शालीनता का समावेश होना चाहिए। हमारी अक्ल के हिसाब से बहिरंग जीवन को चलाना चाहिए, पर हम मानते नहीं। हमारे शरीर की बनावट ऐसी है कि जिन आदतों का अभ्यास पड़ जाता है, उन्हें छोड़ना मुश्किल पड़ जाता है। इसलिए क्या करना पड़ता है कि जो आदतें हमारे ऊपर हावी हैं, उन आदतों को तोड़ने-मरोड़ने के लिए उसी के मुकाबले का प्रेशर हमको इकट्ठा करना पड़ता है और यह कहना पड़ता है कि अच्छा आप हमारे कहने को नहीं मानेंगे, बाज नहीं आएँगे।

आपकी जो पहली आदतें हैं, उन्हें ठीक करना नहीं चाहेंगे। हमारी लंबे समय की आदतें हैं, सो हम बदलने को तैयार नहीं हैं। तो आइए, हमारी-आपकी कुश्ती होगी और हम आपसे लड़ेंगे। अपने आपसे लड़ाई ठान लेना, अपने आप से जद्दोजहद करना, अपनी पुरानी वाली आदतों को तोड़-मरोड़कर रख देना, उन पर इतना ज्यादा प्रेशर, दबाव डालना कि वो चीं बोल जाएँ। पुरानी आदतों को चीं बुलाने के लिए मजबूर करने की प्रक्रिया का नाम है—तप।

मित्रो! हम आपको तप करना सिखाते हैं। अध्यात्म का एक हिस्सा है—तप। तप में हमारी शारीरिक क्रियाओं पर दबाव डाला जाता है। जैसा कि मैंने आपको उपवास के बारे में बताया है। हमारी स्वाभाविक भूख कहती है कि खुराक लाइए और हमें कहना पड़ेगा कि हम आपका कहना नहीं मानेंगे। आप कहते हैं कि हम भूखे हैं, ठीक है, आप ऐसे ही सोइए। हम आपको पानी पिला सकते हैं। एक दिन में आप मरेंगे नहीं। आपको हमारा कहना मानना चाहिए। हम आपको खाना नहीं खिला सकते। यह क्या कहलाता है? तप। हमारी जो पुरानी अभ्यस्त आदतें हैं, उन आदतों के विरुद्ध लोहा लेना, लड़ाई करना, उन्हें इनकार करना—इसका नाम तप कहलाता है।

तप में कठिनाइयाँ बरदाश्त करनी पड़ती हैं। कई प्रकार की कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ती हैं। एक तो शरीर का जैसा अभ्यास है, उस अभ्यास को तोड़ना पड़ता है। जैसे किसी को पलंग पर सोना पड़ता है। उसके बिना नींद नहीं आती। जमीन पर सोयेंगे तो हड्डियाँ टूट जाएँगी, हाथ-पाँव दुःखेंगे, तो कोई बात नहीं। कुछ समय तो आएगी ही। पलंग पर आठ घंटे नींद आती है, तो जमीन पर चार घंटे नींद आती है, तो जमीन पर चार घंटे तो सोएँगे ही। चार घंटे सोकर बरदाश्त कीजिए। नहीं साहब। हम चार घंटे क्यों सोएँ? हम तो आराम से सोएँगे। नहीं, आराम से मत सोइए।

आपको अपने शरीर के ऊपर दबाव डालने के लिए तप कराने को हमारा मकसद यह है कि तितिक्षा कीजिए और बरदाश्त कीजिए। बरदाश्त करना आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक है। हमारे बहिरंग जीवन को विकसित, परिष्कृत करने के लिए तप करना आवश्यक है।

मित्रो! मुझे याद आ गया, शायद नादिरशाह का किस्सा है। नादिरशाह हिंदुस्तान में आया तो उसने उस राजा से, जिसने उसकी अगवानी की थी, उससे कहा कि पानी पीने की जरूरत है। पानी मँगाइए। उसने अच्छे गिलास में, सोने-चाँदी के गिलास में इत्र की खुशबू डालकर के उसके सामने पेश किया। उसने कहा कि आपकी इसी तरह की आदतें हैं।

राजा ने कहा—हाँ! हमको अय्याशी की आदतें हैं। उसने लात मार करके पानी को फेंक दिया और हुक्म दिया हमारी मिलेट्री का भिश्ती बुलाया जाए। भिश्ती आया तो उसने अपना लोहे का टोप उतार करके भिश्ती से कहा कि इसमें पानी डाल। बस, भिश्ती ने मसक खोल दी और टोप में पानी डालता गया और उसने टोप में मुँह लगाकर पेट भर पानी पिया और फिर टोप सिर पर लगा लिया। बोला—"यह अय्यास सोने-चाँदी का गिलास लिए फिरता है।"

कठिनाइयों का जीवन है तप

मित्रो! शारीरिक दृष्टि से कठिनाइयों का जीवन, मानसिक दृष्टि से कठिनाइयों का जीवन जीना तप है। मानसिक दृष्टि से बहुत सारी चीजें ऐसी होती हैं, जो हमारी आदतों में शुमार हैं। उन आदतों को जो हमारी दिमागी अय्याशी में शुमार हैं और हमारी शारीरिक अय्याशी में शुमार हैं, उनके विरुद्ध जब हम लोहा लेने के लिए खड़े हो जाते हैं, तो उसका नाम तप है।

तपाने से क्या होता है? तपाने से हमारा शरीर, हमारी भौतिक शक्तियाँ विकसित होती हैं। जितने भी चमत्कार हुए हैं, जो आप सांसारिक चमत्कार देखते हैं, वे सब तप हैं। जिस किसी सिद्धपुरुष के भीतर, किसी महात्मा के भीतर, तपस्वी के भीतर कोई ऐसी चीज आपको दिखाई पड़ी हो। कैसी? जो संसार के लोगों को प्रभावित करती है, उनकी सहायता करती है, भलाई करती है। ऐसी कोई शक्ति दिखाई पड़े, जिसको आप सिद्ध करते हैं।

असली सिद्धि अगर किसी के पास दिखाई पड़े, तो आप जानना कि वह तप से पैदा हुई है। अगर नकली सिद्धि है, तो वह जालसाजी से पैदा हुई है। जालसाजी से भी सिद्धि पैदा होती है? हाँ बेटे, जालसाजी की तो चल ही रही हैं सिद्धियाँ। अधिकांश सिद्धियाँ जालसाजों की हैं।

मित्रो! एक सज्जन हैं, नाम तो उनका मैं नहीं लेता। वे लोगों के सामने अपना चमत्कार दिखाने के काम करते रहते हैं। बालों में से लाल रंग की बालू निकाल देते हैं। यहाँ पी.सी. सरकार नाम का जादूगर है। उसने एक अखबार में एक चैलेंज छापा। अगर सिद्धियाँ इसी को कहते हैं कि आदमी सिर के बालों में से लाल रंग की बालू निकाल दे, तो मैं सात रंग की बालू निकाल सकता हूँ और मुझे सात गुना सिद्धपुरुष घोषित किया जाए।

सात रंग की बालू और उधर से लाल रंग की बालू, इधर से पीले रंग की बालू, हरे रंग की बालू, काले रंग की बालू— सभी रंगों की बालू का मैं ढेर लगा दूँगा। मुझे सबके सामने पेश किया जाए और अगर मैं बालू न निकाल सकूँ, तो मुझे फाँसी दे दी जाए। बालू निकालकर मैं चला जाऊँगा, मुझे संसार का सबसे बड़ा सिद्धपुरुष माना जाए, जैसे कि हिंदुस्तान में एक आदमी सिर में से लाल रंग की बालू निकालता रहता है।

जो भी हो, नकली सिद्धियाँ तो भगवान जाने कहाँ से आती हैं? चालाकी से भी आती होंगी, लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि अगर किसी के सांसारिक जीवन में, पदार्थिक जीवन में, भौतिक जीवन में कोई विशेषता मालूम नहीं पड़ती हो या किसी आदमी में सांसारिक सहायता करने की सामर्थ्य मालूम पड़ती हो। कोई आदमी किसी की सांसारिक सहायता करता रहता हो, किसी का दुःख दूर करता हो, किसी को संतान का आशीर्वाद देता हो, किसी का सांसारिक कष्ट दूर करता हो।

अगर ऐसा कोई करता हो, तो आप यह जानना कि इसने ऐसा करने की सामर्थ्य अपनी तपश्चर्या से प्राप्त की है। तप के बिना सिद्धियाँ नहीं आ सकतीं, जिसमें कि आदमी का भौतिक जीवन चमत्कारी हो और दूसरों की ऐसी सहायता करने में समर्थ हो। पदार्थपरक सहायता, भौतिक सहायता, धन की सहायता आदि सहायताएँ केवल तप से पैदा होती हैं।

व्यक्तित्व का परिष्कार है तप

मित्रो! तप से क्या हो जाता है? तप से बेटे, आदमी का व्यक्तित्व परिष्कृत हो जाता है। कैसे परिष्कृत होता है?

आध्यात्मिक जीवन के लिए भी, भजन करने के लिए भी हमारा भौतिक जीवन तपस्वी होना चाहिए। कैसे? आप जब इंजेक्शन की सुई लगाते हैं, तो क्या करते हैं?

सुई लगाने से पहले आपका पहला कर्त्तव्य यह हो जाता है कि इसको बॉयल करें, गरम करें—उबालें और स्पिरिट से साफ करें। न करें तब? न करें तब, बेटे सुई में टिटनेस के कीटाणु लगे हो सकते हैं और हमारे खून में जा करके हमें अच्छा करने के बजाय बीमार कर सकते हैं। अगर गरम की हुई सुई नहीं है, तो एक व्यक्ति की बीमारी दूसरे में जा सकती है। इसलिए हमको गौर करना चाहिए। अगर इंजेक्शन बॉयल नहीं किया है, तो काम बनेगा नहीं। अगर आपने अनाज उबाला नहीं है, रोटी अगर सेंकी नहीं है, तो कच्ची रोटी, कच्चा गेहूँ, कच्चा आटा खा लेंगे, तो खाने वाले को मुश्किल होगी। पेट में दरद होगा, कच्चा आटा हजम नहीं होगा। इसलिए आटे को पकाइए, दाल को पकाइए।

मित्रो! दीपक का प्रकाश चाहिए, तो दीपक के तेल-बाती को जलाइए। गरमी पाकर दीपक रोशनी देगा। मैं क्या कह रहा हूँ? बेटे, मैं तप की महत्ता और माहात्म्य बता रहा हूँ। आदमी को आध्यात्मिक जीवन में उन्नति करने के लिए तपस्वी होना चाहिए। तपस्वी जीवन की साधना को आप ध्यान में रखिए। तपस्वी जीवन-एक। एक और बात मैं आपको बताता हूँ, बस, यही दो काम हैं। आत्मिक उन्नति के लिए तीसरा कोई काम नहीं है। एक है—**तप**।

तपस्वी जीवन के लिए हमें और आपको क्या करना चाहिए? यह शिक्षण अभी आगे दूँगा। आज तो मैं सिद्धांत बताता हूँ। दूसरा काम क्या करना पड़ेगा? दूसरा काम करना पड़ेगा **योग**। योग क्या होता है? योग कहते हैं बेटे, दो चीजों को मिला देने को। दो और दो का योग क्या होता है? चार। इसका क्या मतलब हुआ? बेटे, दो में दो चीजें मिला दीं तो चार हो गया। जोड़ का नाम है—योग। जोड़ शब्द जो है योग से बना है। तो किस चीज को हम किस चीज से जोड़ दें? भौतिक जीवन को हम तप से जोड़ें।

अपने पंचतत्त्वों को हम तप से जोड़ें, ताकि वे परिष्कृत हो जाएँ, श्रेष्ठ हो जाएँ, शक्तिशाली हो जाएँ; श्रेष्ठतम हो जाएँ, ठीक हो जाएँ। और हम अपने अंदर जीवन को अर्थात अपनी चेतना को किसके साथ जोड़ें? भगवान के साथ जोड़ें। अपनी जीवात्मा को जब हम भगवान के साथ में, परमात्मा के साथ में जोड़ देते हैं, तब क्या हो जाता है? उदाहरण के लिए मैं आपको समझाता हूँ। आपने पारस पत्थर का नाम सुना होगा। लोहे को पारस पत्थर के साथ छुआ देते हैं, तो क्या हो जाता है? उसका नाम सोना हो जाता है। इस तरह के बहुत उदाहरण हैं।

भगवान से जुड़ने का नाम योग

मित्रो! किसी बड़े आदमी के संपर्क में आने के बाद में छोटे-छोटे आदमी बड़े हो जाते हैं। अक्सर मैं लाल बहादुर शास्त्री का किस्सा सुनाया करता हूँ। मुझे बहुत प्यारा लगता है। लाल बहादुर शास्त्री को उनके नाना ढाई रुपया महीना पढ़ने के लिए दिया करते थे। वे प्राइमरी स्कूल के मास्टर थे और उस जमाने में पंद्रह रुपया महीना वेतन मिलता था। तीन-चार बच्चे उनके भी थे। एक लड़की थी। वह विधवा हो गई और अपने बच्चे को लेकर अपने पिता के यहाँ रहने लगी।

लड़का जब बड़ा हुआ। उसने प्राइमरी स्कूल पास कर लिया, तो उस बच्चे ने कहा—"नाना जी! हमारा मन आगे भी पढ़ने का है।" उन्होंने कहा—"बेटे, हम क्या कर सकते हैं? तुम्हारे हिस्से में ढाई रुपया आता है, उससे तुम खाना-पीना-पढ़ना, जो चाहो कर सकते हो।" ढाई रुपया महीना लाल बहादुर शास्त्री ने स्वीकार कर लिया और बनारस चले गए, पढ़ने लगे। उसी में से एक रुपया का आटा खरीद लेते।

जंगल से लकड़ी बीनकर लाते। आटे में नमक मिलाकर रोटी बनाकर ले आते। जंगल में रोटी बनाते। सुबह की खुराक खा लेते और शाम के लिए रूमाल में बाँधकर ले आते। शाम को सबेरे वाली रोटी काम दे जाती। ऐसी गरीबी में पैदा हुए लाल बहादुर शास्त्री का जवाहर लाल नेहरू से मिलना-जुलना हो गया। पं. जवाहर लाल नेहरू के साथ में वे कांग्रेस वालंटियर कोर में भरती हो गए।

मित्रो! जवाहर लाल नेहरू ने बहुत से वालंटियरों को देखा। सबसे अच्छा वालंटियर चरित्र की दृष्टि से, व्यवस्था-बुद्धि की दृष्टि से, अनुशासन की दृष्टि से; हर कसौटी पर उन्हें कसा गया। पं. नेहरू को वह लड़का पसंद आ गया। उन्होंने कहा—"लड़के तुम वालंटियर कोर में से हमारे साथ रहा करो।" शास्त्री जी ने कहा—"हाँ, साथ रहेंगे। आप जो हुक्म देंगे, वही करेंगे। आप हमारे कप्तान हैं।"

शास्त्री जी साथ रहने लगे और पंडित नेहरू जितना ज्यादा पढ़ते चले गए, लाल बहादुर को उतनी ही ज्यादा इज्जत देते गए। लाल बहादुर शास्त्री को उन्होंने ही एम.एल.ए. बनाया। फिर यू.पी. का मिनिस्टर बनाया और फिर सेंट्रल गवर्नमेंट का मिनिस्टर बनाया और जब पं. नेहरू मरने को हुए, तो लोगों ने पूछा कि आपके बाद में आपकी गद्दी किसको सुपुर्द की जाए, तो उन्होंने एक ही आदमी की तरफ इशारा किया। हमारी दृष्टि में, हमारे संपर्क में जितने आदमी आए हैं, उनमें से लाल बहादुर शास्त्री बेहतरीन आदमी हैं। पं. नेहरू के बाद में उन्हें बादशाह बना दिया गया।

मित्रो! मैं यह योग से जुड़ने की बात कह रहा था। लाल बहादुर शास्त्री पं. नेहरू से जुड़ गए। आप तो भगवान के साथ रस्सी में बाँधकर जोड़ने की कोशिश करते हैं। पूजा की कोठरी में भगवान जी को रख लेते हैं और कहते हैं कि आइए, हम और आप पास-पास बैठेंगे। गले में गायत्री माता का लॉकेट पहन लिया। यह बाँध ली गायत्री माता। कहाँ बाँध ली? अरे गले में। गले में क्यों बाँधते हैं? हाथ-पाँव में बाँध लें। अरे महाराज जी! गायत्री माता भाग जाएँगी, इसलिए मैंने गले में बाँध ली हैं। आप तो उनके शरीर को बाँधना चाहते हैं। उन्होंने अपने मन को बाँध लिया था, जोड़ लिया था।

जोड़ देने से क्या होता है? जोड़ देने से बेटे, नाला गंगा जी हो जाता है। गंदगी से भरा गंदा नाला जुड़ जाने के बाद में गंगाजल हो जाता है। लोग आचमन करते हैं, जल भर करके ले जाते हैं और शंकर जी पर चढ़ाते हैं और कहते हैं कि यह गंगाजल है। आदमी जब श्रेष्ठता के साथ जुड़ जाता है, नाला गंगा से जब जुड़ जाता है, तो क्या हो जाता है? श्रेष्ठ हो जाता है। मनुष्य जब भगवान से जुड़ जाता है, तो क्या हो जाता है? वह भगवान हो जाता है। आदमी अगर सही माने में भगवान से जुड़ा है, तो भगवान से कम कैसे हो सकता है? चलिए उससे घटिया बात भी अगर मान लें, तो लोहा पारस से छूकर पारस न भी हुआ, तो सोना तो जरूर हो जाता है।

मित्रो! आदमी के भगवान से जुड़ जाने के बाद में दोनों के बीच का आदान-प्रदान चालू हो जाता है। दोनों के बीच करेंट चालू हो जाता है। अगर इस माइक में करेंट हो और हम इसे पकड़ लें, तो करेंट हमारे भीतर आएगा कि नहीं आएगा? जरूर आ जाएगा। और आप सारे-के-सारे लोग हमको पकड़ लें, तो क्या हो जाएगा बताइए? आप सबमें करेंट फैल जाएगा कि नहीं फैल जाएगा। फिर हम सब मरेंगे। क्यों? क्योंकि करेंट एक से दूसरे में चला जाएगा।

क्या है भगवान?

भगवान को आप पकड़ लें तब? भगवान क्या है? भगवान एक करेंट है। तो क्या होगा? तो वह करेंट आपको भी पकड़ लेता है। फिर क्या होगा? भगवान की जो गरमी है, वह आपके भीतर आ जाएगी। अगर भगवान की विशेषता न आए तब? तब बेटे, शर्त है कि आप पकड़ क्या रहे हैं? लीजिए पकड़ लिया और चिल्लाए—भाई साहब! करेंट आ गया-करेंट आ गया। अरे आप तो ऐसे ही चिल्ला रहे थे, झूठ बोल रहे थे। मैं तो बहका रहा था।

क्यों बहका रहे थे? इसलिए कि आपको यह रोब गालिब हो जाए कि गुरुजी कितने ताकतवर हैं, देखो, बिजली को पकड़ लिया। वास्तव में क्या होता है कि जो करेंट बिजली का हमारे शरीर में और जिस्म में जाता दिखाई पड़ता है। अगर भगवान के साथ में मनुष्य जुड़ जाए, तब? तब भगवान की सारी विशेषताएँ इनसान के भीतर दिखाई पड़ेंगी। इनसान के भीतर भगवान के गुण, भगवान के कर्म, भगवान के स्वभाव, भगवान की इच्छाएँ दिखाई पड़ेंगी।

मित्रो! आदमी के भीतर यह सब दिखाई न पड़े तब? तब मैं यह कहता हूँ कि योग हुआ नहीं। न गंगाजल का योग नदी के साथ हुआ, न बिजली करेंट का, न पारस का लोहे से हुआ। अच्छा साहब! भगवान के साथ योग साधने के लिए भगवान के साथ क्या करना पड़ेगा? बेटे, मिलना पड़ेगा, घुलना पड़ेगा। जब दोनों आपस में मिल जाते हैं, घुल जाते हैं, तो दोनों की स्थिति और दोनों की हैसियत एक हो जाती है। हमारी आत्मा की स्थिति परमात्मा जैसी हो जाती है।

तो करना क्या पड़ेगा? मिला देना पड़ेगा। मिलाने के लिए क्या करना चाहिए? भगवान के साथ योग करने से पहले क्या करना चाहिए? इससे पहले योग करना मैं सिखाऊँगा। किसके साथ योग किया जाता है? यह बताने से पहले मुझे यह समझाना होगा कि भगवान आखिर है क्या चीज। चलिए अब मैं यही बात शुरू करता हूँ, अन्यथा आप भटकते रहेंगे और वहम में मारे-मारे फिरेंगे।

मित्रो! भगवान क्या चीज है? भगवान को मैं दो हिस्सों में बाँट देता हूँ। एक है—ब्रह्म। ब्रह्म किसे कहते हैं?

ब्रह्म उसे कहते हैं जो सारे-के-सारे विश्व का नियंत्रण कर रहा है। सारे-के-सारे कानून बना दिए हैं और ऑटोमेटिक सिस्टम बना दिए हैं।

हमारे भीतर ऑटोमेटिक सिस्टम उस भगवान ने बना दिया है, ताकि इनसान बनने, व्यवस्था करने के मामले में उसको बार-बार दखल न देना पड़े। हमारे भीतर ऑटोमेटिक सिस्टम है। जिस दिन हम कुछ ऐसी चीज खा लेते हैं, जैसे दूध में डालकर नीलाथोथा खा लें, मिट्टी खा लें तो तुरंत उलटी हो जाएगी। यह कौन उलटी कर रहा है ? बेटे, इसके अंदर मशीन बैठी हुई है, जो ऑटोमेटिक सिस्टम से हमारा सारा काम चलाती है। हम जुलाब की गोली खाते हैं, फौरन हमको दस्त होने लगते हैं। आग छूते हैं और हम जल जाते हैं। बरफ खाते हैं और ठंढे हो जाते हैं। यह क्या चीज है ? यह एक ऐसा सिस्टम, ऐसी व्यवस्था है, जिसके अंदर जड़ और चेतन सब जुड़े हैं।

यह कौन है ? यह सारी-की-सारी सृष्टि की व्यवस्था बनाता है। उसका नाम ब्रह्म है। ब्रह्म एक कायदे का नाम है; एक कानून का नाम है; एक नियम का नाम है; एक मर्यादा का नाम है, जो सारी व्यवस्था को संचालित करता है। उसका स्वरूप बताइए। बेटे, हम उसका स्वरूप नहीं बता सकते। इतना बड़ा ब्रह्म है कि ईश्वर की कोई व्याख्या हम कर सकने में समर्थ नहीं हैं। नहीं, आप कर दीजिए। नहीं बेटे, हम नहीं कर सकते। कैसे ? ईश्वर की तो हम तब व्याख्या करेंगे, जब उसकी छोटी-छोटी क्रियाओं की हम व्याख्या नहीं कर सकते।

[क्रमशः समापन अगले अंक में]

चीन में एक प्रसिद्ध दार्शनिक हुआ है—कन्फ्यूशियस। कन्फ्यूशियस से एक बार उनके शिष्यों ने पूछा—''गुरुदेव! यह बताएँ कि किसकी प्रार्थनाएँ सच्ची हैं ?'' कन्फ्यूशियस ने उत्तर दिया—''लिंची ही ऐसा साधक है, जिसकी प्रार्थनाएँ भगवान सुनते हैं।'' स्वाभाविक था कि शिष्यों के मन में लिंची से मिलने की उत्सुकता हुई। उनमें से कुछ लिंची से मिलने उसके गाँव पहुँचे। पर लिंची एक साधारण किसान था। कन्फ्यूशियस के शिष्य दिनभर उसके पास बैठे रहे कि जब वो कोई विशेष प्रार्थना करेगा तो उसे लिख लेंगे और फिर उसका अभ्यास करेंगे।

लिंची सुबह होते ही अपने खेत पर पहुँचा और आसमान की ओर मुँह करके बोला—''हे प्रभु! आपने मुझे यह जीवन दिया, इसके लिए धन्यवाद।'' और यह कहकर खेत में काम करने लगा। जब दिनभर उसने कोई और प्रार्थना नहीं की तो कन्फ्यूशियस के शिष्य निराश होकर लौट गए और बोले—''गुरुदेव! आपने कहाँ भेज दिया, लिंची ने तो बस एक वाक्य की प्रार्थना की।'' कन्फ्यूशियस हँसा और बोला—''बच्चो! जब किसी का जीवन ही प्रार्थना बन जाता है तो उसे अलग से आडंबर करने की आवश्यकता नहीं रहती। सच्ची प्रार्थना मनुष्य के अंतःकरण से जन्म लेती है और वही परमात्मा तक पहुँचती भी है।''

▶'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष◀

विश्वविद्यालय परिसर से—188

विश्व को सांस्कृतिक अनुदान प्रदान करता विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परमपूज्य गुरुदेव द्वारा स्थापित एक ऐसे वैश्विक दर्शन का प्रतीक है, जिसकी स्थापना का उद्देश्य भारतीय संस्कृति के अतुलनीय योगदानों से संपूर्ण विश्व को अवगत कराना रहा है। पिछले 18 वर्षों की इस विश्वविद्यालय की यात्रा ऐसे ही विलक्षण कीर्तिमानों से भरी-पूरी रही है, जिनके माध्यम से परमपूज्य गुरुदेव की इसी सोच को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयत्न किया गया है।

सन् 2020, कोरोना वायरस के वैश्विक संक्रमण से दुष्प्रभावित वर्ष रहा एवं इसके कारण वैश्विक प्रतिनिधियों का आगमन विश्वविद्यालय में संभव न हो सका। इसके बावजूद देव संस्कृति विश्वविद्यालय की अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों में तनिक भी कमी नहीं आई एवं पहले से भी ज्यादा गति के साथ विश्वविद्यालय युगऋषि के विचारों को वैश्विक पटल पर पहुँचाता दिखाई पड़ा।

इस क्रम में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं सर्वयोग अंतरराष्ट्रीय परिषद्, इटली के सम्मिलित सहयोग से संपन्न हुआ, जिसमें दोनों प्रतिष्ठित संस्थानों के संयुक्त प्रयासों से एक ग्लोबल ई-कॉन्फ्रेंस का आयोजन किया गया। इस ई-कॉन्फ्रेंस का विषय था—पश्चिमी व पूर्वी दर्शन एवं वैश्वीकरण के समय में उनकी भूमिका।

इस ई-कॉन्फ्रेंस में सर्वप्रथम कनाडा के युवा कार्यकर्त्ता श्री मिहिर मोदी द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय का परिचय प्रदान किया गया, जिसके उपरांत देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी द्वारा मानवीय उत्कर्ष के विषय पर प्रकाश डाला गया। उन्होंने कहा कि सही दृष्टि से देखा जाए तो मानवीय उत्कर्ष, जो परमपूज्य गुरुदेव द्वारा दिए गए महत्त्वपूर्ण चिंतनों में से एक है—इसका उद्देश्य ही पश्चिमी एवं पूर्वी दर्शन के समन्वय को स्थापित करना है। इसके साथ ही सर्वयोग अंतरराष्ट्रीय परिषद्, इटली की अध्यक्षा प्रोफेसर अंतो नियता रोजी द्वारा इस विषय पर गंभीर भाव प्रकट किए गए।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा एक ऐतिहासिक ग्लोबल ई-समिट का आयोजन भी किया गया। यह समिट देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित एशिया के पहले एवं अकेले सेंटर फॉर बाल्टिक कल्चर एवं स्टडीज ने लाट्विया दूतावास के साथ मिलकर संपन्न किया। इस समिट को 18-19 नवंबर, 2020 में संपन्न कराया गया।

इस समिट के उद्घाटन सत्र का आरंभ भारत सरकार के विदेश सचिव श्री विकास स्वरूप जी, भारत में लाट्विया के राजदूत श्री बर्तुलिस जी, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी, लाट्विया विश्वविद्यालय के कुलाधिपति प्रोफेसर ऑजेंस एवं वेंटसपिल्स विश्वविद्यालय के कुलाधिपति प्रोफेसर कार्लिस द्वारा किया गया।

इस कार्यक्रम के पहले सत्र में रीगा टेक्निकल विश्वविद्यालय के उपकुलाधिपति प्रोफेसर टिपेन्स, वेंटसपिल्स विश्वविद्यालय की निदेशक डॉ. कोलाडा, लाट्विया की पूर्व शिक्षामंत्री प्रोफेसर द्रुविते एवं डोगावपिल्स विश्वविद्यालय की कुलपति प्रोफेसर बुरिमा द्वारा भारत-लाट्विया संबंधों पर अपने विचार रखे गए। सभी ने सम्मिलित स्वरों में भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त किया एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रयासों को सराहा।

इस कार्यक्रम के दूसरे सत्र में लाट्विया योग विद्यालय के प्रमुख श्री आरनिस सिलिंस, युर्मला योग विद्यालय की प्रमुख सुश्री फ्रोलोवा, लाट्विया विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्र विभाग की डॉ. सनिता सिलिना द्वारा योग एवं वैकल्पिक चिकित्सा विषयों पर अपने मत व्यक्त किए गए।

इस कार्यक्रम के अंतिम सत्र में लाट्विया चैंबर ऑफ कॉमर्स के अध्यक्ष प्रोफेसर रोस्टो विसकिस, लाट्विया विश्वविद्यालय की प्रोफेसर अंक रावा, डॉ. गुना, डॉ. मरीना एवं सुश्री रगीना द्वारा संस्कृति एवं चिकित्सा विषयों पर शोधपत्र प्रस्तुत किए गए।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय जिस गति से अंतरराष्ट्रीय फलकों पर कार्य करता रहा है, उसी का परिणाम है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिनिधियों को वैश्विक मंच द्वारा समय-समय पर महत्त्वपूर्ण सम्मानों से नवाजा जाता रहा है।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति को विश्व के सबसे प्रतिष्ठित पुरस्कार टेंप्लटन पुरस्कार समिति के जज की भूमिका को निभाने के अवसर पर सम्मानित किया गया। उल्लेखनीय है कि सर जॉर्ज टेंपलटन फाउंडेशन द्वारा स्थापित इस प्रतिष्ठित पुरस्कार को अब तक पाँच नोबुल पुरस्कार विजेता प्राप्त कर चुके हैं। गत वर्ष का पुरस्कार प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. कॉलिन्स को प्रदान किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने इस पुरस्कार को प्रदान करने वाली निर्णायक समिति के जज के रूप में अपनी सेवाएँ अवैतनिक रूप से तीन वर्षों तक प्रदान कीं, जिसके उपलक्ष्य में टेंपलटन फाउंडेशन की अध्यक्षा हैदर टेंपलटन द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया। प्रतिकुलपति ने इस पुरस्कार को पूज्य गुरुदेव व वंदनीया माताजी के चरणों में समर्पित करते हुए इसे उनके आशीर्वाद एवं श्रद्धेय कुलाधिपति व श्रद्धेया जीजी के सम्मिलित मार्गदर्शन का परिणाम बताया।

एक ऐसी ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धि देव संस्कृति विश्वविद्यालय की छात्रा रही सुश्री रावत को मिली, जब उन्हें देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पार्टनर विश्वविद्यालय के०डब्ल्यू०यू० पोलैंड द्वारा मनोविज्ञान क्षेत्र में पी-एच०डी० करने के लिए पूर्ण छात्रवृत्ति प्रदान करते हुए पाँच वर्षों के लिए पोलैंड आमंत्रित किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय जिस तरह से वैश्विक पटल पर अपनी पहचान बना रहा है, उसी तरह से इसकी उपलब्धियाँ राष्ट्रीय स्तर पर निरंतर एक नया स्वरूप प्राप्त करती जा रही हैं। उदाहरण के तौर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय को राज्यस्तरीय प्रीआरडी परेड चयन शिविर के आयोजन को करने का अवसर प्राप्त हुआ।

इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के तीन विद्यार्थियों का चयन राष्ट्रीय गणतंत्र दिवस परेड हेतु किया गया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के राष्ट्रीय सेवा योजना विभाग के समन्वयक डॉ. इन्दौलिया एवं श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने विद्यार्थियों को शुभकामनाएँ दीं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने अपने नए शैक्षणिक वर्ष का प्रारंभ भी ऑनलाइन माध्यम से ज्ञानदीक्षा को संपन्न करके किया। यह कार्यक्रम अपने आप में ऐतिहासिक रहा, जब देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नवीन सत्र के सैकड़ों विद्यार्थी ऑनलाइन माध्यम से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के ज्ञानदीक्षा कार्यक्रम के अंग बने।

इस कार्यक्रम की अध्यक्षता श्रद्धेय कुलाधिपति जी द्वारा की गई। उन्होंने विद्यार्थियों को दीक्षा प्रदान करते हुए इस कार्यक्रम की विशिष्टता पर प्रकाश डाला। शिक्षा एवं विद्या का महत्त्व समझाते हुए उन्होंने कहा कि आजकल सभी विद्यार्थी पैकेज की दौड़ में लगे दिखाई पड़ते हैं, ऐसे में देव संस्कृति विश्वविद्यालय एक नई सोच के साथ कुछ नए कीर्तिमान रचता दिखाई पड़ता है, जहाँ पर पैसों को नहीं, बल्कि व्यक्तित्व को प्रधानता दी जाती है।

इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित आदरणीय स्वामी अवधेशानंद जी द्वारा विद्यार्थियों को एक समग्र जीवन जीने का संदेश प्रदान किया गया। इस कार्यक्रम में विश्वविद्यालय के सभी आचार्यगण, कुलपति श्री शरद पारधी जी, प्रतिकुलपति जी, कुलसचिव श्री बलदाऊ देवांगन जी एवं शांतिकुंज के सभी कार्यकर्त्तागण भागीदार बने।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के अद्भुत कीर्तिमानों को सुनकर राष्ट्रीय प्रशासनिक सेवा अकादमी, मसूरी के निदेशक डॉ. संजीव चोपड़ा जी सपरिवार देव संस्कृति विश्वविद्यालय आए एवं परमपूज्य गुरुदेव के चिंतन से वे इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के साथ मिलकर प्रशासनिक सेवा का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे सभी अभ्यर्थियों के लिए एक सम्मिलित कार्यक्रम चलाने की उद्घोषणा की। ज्ञातव्य है कि लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय अकादमी विश्व के सबसे प्रतिष्ठित संस्थानों में से एक है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी की भेंट उत्तराखंड के मुख्यमंत्री माननीय श्री त्रिवेंद्र सिंह रावत जी एवं संपूर्ण मंत्रिमंडल के साथ भी हुई, जहाँ मुख्यमंत्री जी ने 'आपके द्वार, पहुँचा हरिद्वार' चिंतन को अत्यंत गंभीरता के साथ स्वीकार किया और हरिद्वार कुंभ पर उसी विषय को ध्यान में रखते हुए सम्मिलित प्रयासों को चलाने का लक्ष्य भी निर्धारित किया। इस तरह विश्वविद्यालय की प्रगति सर्वोन्मुखी रही। ❑

अपनों से अपनी बात

गायत्री-उपासना का दिव्य तीर्थ—शांतिकुंज

पहली बार यदि हम किसी चीज को देखें तो वह दिखने में छोटी दिखाई पड़ती है, पर यदि थोड़ा समय गुजरने दिया जाए तो वही छोटी-सी चीज एक बृहत् प्रयास में, एक बड़े आयोजन में बदल जाती है। मात्र समय को गुजरने देने की आवश्यकता है। पहली बार देखने पर बीज छोटा-सा दिखता है, पर जैसे ही उस बीज को फलने-फूलने का, विकसित होने का अवसर मिलता है, समय मिलता है तो वही बीज, देखते-देखते एक विशाल वृक्ष में बदल जाता है। ईंट छोटी-सी होती है, पर जैसे ही उस ईंट को गारे से जुड़ने का अवसर मिलता है—वैसे ही वह ईंट एक इमारत में बदल जाती है। इनसान का स्वयं का विकास एक छोटी-सी कोशिका से होता है; और वह छोटी-सी कोशिका जब RNA, DNA के साथ जुड़ती है तो एक पूरे इनसान में बदल जाती है।

यह विश्व-ब्रह्मांड भी कभी एक छोटे से अणु से ही प्रारंभ हुआ होगा। शास्त्रों में कहा भी गया है—**यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे**। विस्तृत होते-होते एक छोटा-सा अणु, एक छोटा-सा पिंड—एक विशाल ब्रह्मांड में बदल जाता है। ऐसा नहीं है कि ये बातें मात्र भारतीय शास्त्र करते हैं—आज का भौतिक विज्ञान भी ब्रह्मांड की उत्पत्ति के पीछे जिस सिद्धांत को मानता है, वो सिद्धांत भी ये ही कहता है कि एक छोटे से अणु के द्वारा ही इस विशाल ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई है। इसीलिए एक छोटे से अणु के भीतर इतनी ऊर्जा सन्निहित है कि वो अणु बम—वह नाभिकीय ऊर्जा विश्वव्यापी संहार की सामर्थ्य रखती है।

इसी तरह से एक ऐसी ही संभावना, एक ऐसी ही ताकत—भारतीय संस्कृति के भीतर भी छिपा करके रख दी गई है। एक ऐसा ही ऊर्जा का भंडार भारतीय ऋषियों ने हमारी परंपरा में भी छिपा करके रख दिया है, जो दिखने में तो छोटा-सा है, पर उसके अंदर इतनी ताकत सुरक्षित है कि यदि उसका संपूर्ण स्वरूप बाहर प्रकट होकर आ जाए तो वह पूरे ब्रह्मांड को, उसके एक-एक अणु को हिला देने की ताकत रखता है और उस शक्ति का नाम—गायत्री मंत्र है। गायत्री मंत्र में सृष्टि के निर्माण की, सृष्टि के संहार की, सृष्टि के आमूलचूल परिवर्तन की संभावनाएँ सुरक्षित हैं। इस सत्य का प्रमाण शास्त्रों में स्थान-स्थान पर मिल जाता है।

पुराणों में वर्णन आता है कि भगवान ब्रह्मा सृष्टि के निर्माण के लिए तप करने बैठे तो जो मंत्र उनको मिला, वह गायत्री मंत्र था। रावण को मारने के लिए भगवान राम को जिस मंत्र के माध्यम से शक्ति मिली; वह मंत्र भी गायत्री मंत्र ही था। जब भगवान सृष्टि का निर्माण करते हैं तो गायत्री मंत्र की शक्ति का प्रयोग होता है; जब भगवान असुरता का अंत करते हैं तब इस शक्ति का प्रयोग होता है; जब वेदों का ज्ञान निस्सृत होता है तब भी इसी शक्ति का प्रयोग होता है—इन उदाहरणों से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि गायत्री मंत्र के अंदर छिपी हुई शक्ति कितनी प्रभावकारी है?

सही पूछा जाए तो भारतीय संस्कृति का जितना भी विस्तार है, वो सारा-का-सारा गायत्री महामंत्र के ही कारण है। गंगासागर पहुँचकर हम गंगा को देखते हैं तो गंगा अथाह दिखाई पड़ती है, पर वही गंगा गोमुख में छोटे से ग्लेशियर से निकलकर आती है। कई सारी नदियाँ तो छोटे-छोटे कुंडों से निकलकर आती हैं। उद्गम छोटा दिखते हुए भी उसका परिणाम विशाल निकलकर आता है। ऐसा ही कुछ भारतीय संस्कृति के साथ भी हुआ है, इसकी शिक्षाएँ, इसका साहित्य, इसकी प्रेरणाएँ—समुद्र की तरह अपरिमित दिखाई पड़ती हैं, पर उस सारे ज्ञान का, विज्ञान का जन्म गायत्री के महामंत्र से ही हुआ है। इसलिए यदि कोई इस एक गायत्री मंत्र को जान जाता है तो वह सारे भारतीय ज्ञान को जान जाता है।

पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा जी ने सृष्टि बनाई, तप किया, गायत्री धरती पर आई क्यों? ताकि सृष्टि का संचालन संतुलन के साथ किया जा सके। पुराण ही क्यों, वेदों की उत्पत्ति भी माँ गायत्री के एक-एक मुख से मानी जाती है। वाल्मीकि रामायण के 24000 श्लोकों में भी प्रत्येक 1000 श्लोक के बाद गायत्री मंत्र के एक-एक अक्षर का संपुट

लगा हुआ है। श्रीमद्भागवत महापुराण के 24000 श्लोकों में भी यही क्रम दोहराया गया है। गायत्री मंत्र का महत्त्व मात्र ऐतिहासिक-पौराणिक संदर्भ में ही नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक संदर्भ में भी है।

अथर्ववेद में सूत्र आता है कि

ओऽम् स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं
कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

यह सूत्र ये कहता है कि गायत्री की नित्य उपासना करने वाले को 5 भौतिक और 2 आध्यात्मिक लाभ होते हैं। गायत्री की नित्यप्रति की उपासना हमारी इस लोक की और उस लोक की समस्त कामनाओं को पूरा करती है।

यहाँ ये बातें लिखने का उद्देश्य मात्र इतना है कि इसी गायत्री-उपासना के एक जीवंत और जाग्रत तीर्थ के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज की स्थापना की। इस परिसर के कण-कण के भीतर गायत्री माता की उपस्थिति का एहसास भावनाशील साधक सहजता से कर सकते हैं। भाव न रखने वालों को तो आँखों के सामने खड़े भगवान भी नहीं दिखाई पड़ते, पर देखने वाले, देख सकने वाले—इस परिसर में गायत्री माता की साक्षात् उपस्थिति का एहसास कर सकते हैं। उनके वरदपुत्र के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री के 24 महापुरश्चरणों को संपन्न करके इस युग के विश्वामित्र की पदवी को प्राप्त किया और अपनी उपस्थिति से शांतिकुंज को एक जीवंत-जाग्रत गायत्री तीर्थ के रूप में स्थापित किया।

शांतिकुंज की स्थापना के 50 वर्ष के उपलक्ष्य में प्रत्येक जीवंत साधक से, गायत्री परिजन से यही अपेक्षा है कि वे भारतीय संस्कृति के आधार, मेरुदंड गायत्री मंत्र की साधना इतने प्रचंड पुरुषार्थ से करें कि धरा का एक-एक हिस्सा इसकी ऊर्जा से भर उठे। इससे श्रेष्ठ श्रद्धांजलि इस शुभ अवसर पर नहीं हो सकती। ❑

खलीफा अली जंग के मैदान में थे। एक मौका आया, जब उन्होंने दुश्मन राजा को उसके घोड़े से नीचे गिरा लिया और उसकी छाती पर बैठ गए। खलीफा ने अपनी तलवार तिरछी की और वो उसे दुश्मन के दिल में भोंकने ही वाले थे कि यकायक दुश्मन राजा ने उनके मुँह पर थूक दिया। खलीफा तुरंत एक तरफ हट गए और बोले—"आज की जंग यहीं खतम। हम कल फिर लड़ेंगे।" दुश्मन राजा बोला—"लगता है कि आप घबरा गए। आज आपके पास मौका है जंग जीतने का, हो सकता है कल ऐसा न हो पाए।"

खलीफा ने उत्तर दिया—"मित्र! मजहब का उसूल है कि कभी जोश में होश खोकर कोई काम न करो। जब तुमने मुझ पर थूका तो मुझे गुस्सा आ गया। गुस्से में किया गया वार हिंसा होती, इसलिए मैंने कहा कि आज नहीं कल लड़ेंगे।" दुश्मन के अचरज का ठिकाना न रहा। वह तुरंत खलीफा के पैरों में झुक गया और बोला—"जो इनसान जंग भी उसूलों से लड़ता हो उसे मैं क्या दुनिया की बड़ी-से-बड़ी ताकत भी नहीं हरा सकती। मैं यह जंग आज ही खतम करता हूँ।" सिद्धांतों के आधार पर चलाए गए अभियान ही धर्मयुद्ध होते हैं।

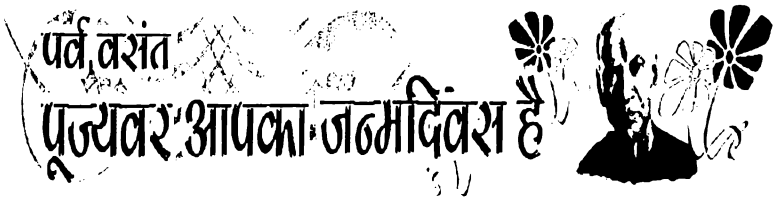

दादा गुरु का मिलन पूज्यवर, से जग में मनभावन है।
जन्मदिवस गुरु का आध्यात्मिक, पर्व वसंत सुपावन है॥

आज मनुज के कर्म हो रहे,
जग में सब अलसाए हैं।
नीति, न्याय के पथ चलकर ही,
मानव मन मुस्काए हैं।

नवयुग के सोपानों का, पहला पड़ाव अनुशासन है।
जन्मदिवस गुरु का आध्यात्मिक, पर्व वसंत सुपावन है॥

प्रगतिशील जीवन की सारी,
मिट गई परंपराएँ हैं।
नैतिकता के पथ जीवन की,
टिकी हुई आशाएँ हैं।

दिखने को तैयार विश्व अब, नंदन वन का कानन है।
जन्मदिवस गुरु का आध्यात्मिक, पर्व वसंत सुपावन है॥

खड़ी सामने आज विश्व के,
लाखोलाख समस्याएँ हैं।
अहंकार से भरा हुआ,
मानव कर रहा अवज्ञाएँ हैं।

विस्मयकारी युग परिवर्तन, अब कर रहा निवारण है।
जन्मदिवस गुरु का आध्यात्मिक, पर्व वसंत सुपावन है॥

स्वार्थ वृत्ति के आचरणों ने,
जग में कष्ट बढ़ाए हैं।
गुरुवर ने संवेदन के स्वर,
मन में पुनः जगाए हैं।

हर युग में अवतार प्रभु का, देता नई सिखावन है।
जन्मदिवस गुरु का आध्यात्मिक, पर्व वसंत सुपावन है॥

—शोभाराम शशांक

युगतीर्थ में उत्साहपूर्वक संपन्न किया गया देवोत्थान एकादशी एवं तुलसी विवाह पर्व

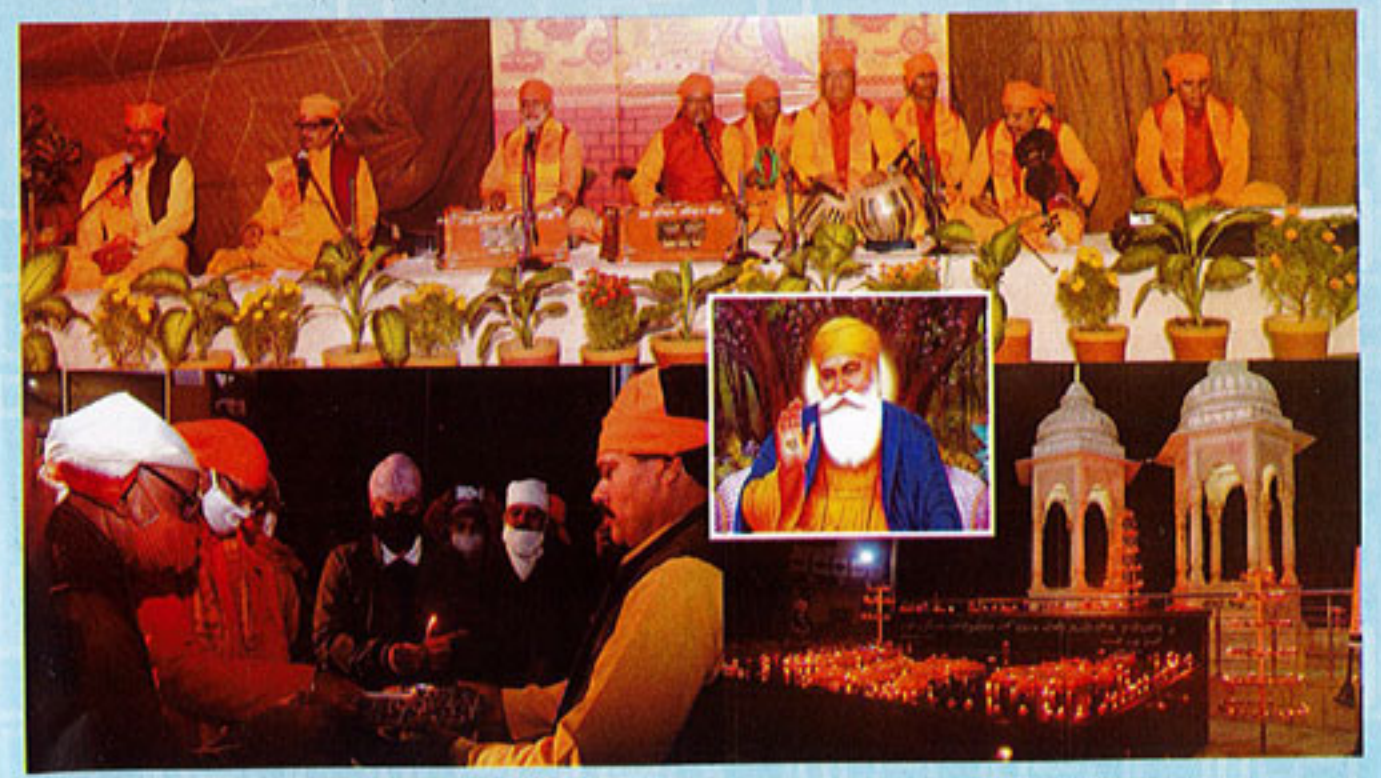

श्री गुरुनानक देव जी महाराज का 551 वाँ प्रकाश पर्व युगतीर्थ शांतिकुंज में उत्साहपूर्वक संपन्न

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र.दि. 01-01-2021
Regd No. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
No: Agra/WPP-08/2021-2023

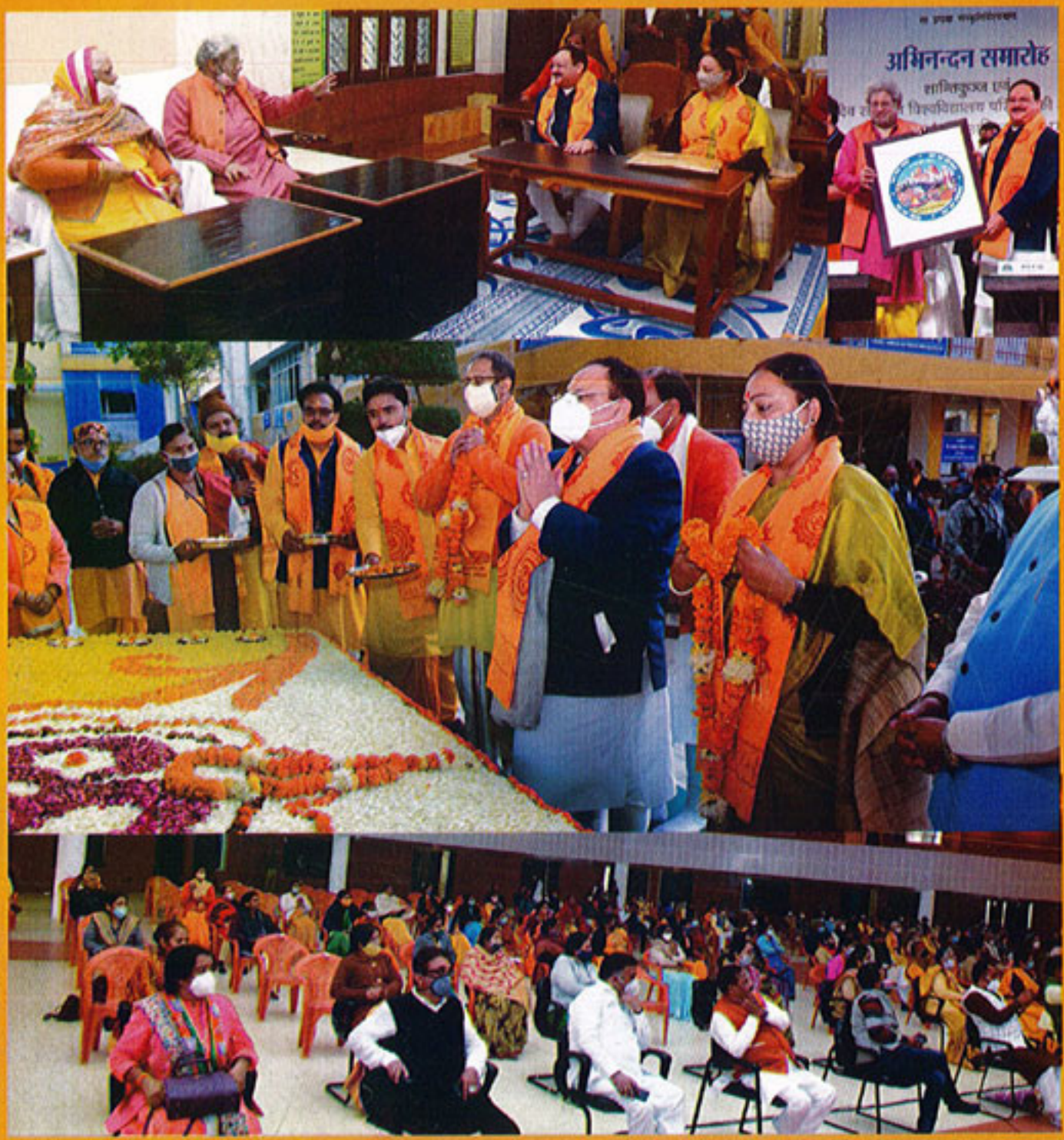

माननीय श्री जगत प्रकाश नड्डा (राष्ट्रीय अध्यक्ष–भारतीय जनता पार्टी एवं राज्यसभा सदस्य) का युगतीर्थ में आगमन अभिनंदन

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org